हुआ है आज जो कुछ सब विधाता ने दिखाया है।
न है कुछ दोष माता का न कुछ इसने बनाया है॥

धेयी—बेटा भरत ! तुम तो ज्ञानवान और नीति में सुजान हो ! होनी होकर रहती है, विधाता की गती टाली नहीं जा सकती। जो हो चुका है वह कदापि वापिस नहीं हो सकता; इस लिये मन में शान्ति धरो और प्रजा हित के लिये राज्य करो ?

भरत—राज्य करूं ! राम को बनों में भेज कर राज्य करूं ! लक्ष्मण और जानकी को संकट में फसाकर राज्य करूं ! यह तू कौन से मन से कह रही है ? यह तेरी कौन सी आत्मा के भाव हैं। आह अभागिन ! यदि तू माता कौशल्या के दिल से पूछती, यदि तुझे माता सुमित्रा के कलेजे की तड़प मालूम होती, तो तुझ पता चल जाता कि सब दिल तेरे जैसे नहीं होते। आह ! तूने अपनी ही सन्तान को धोखा दिया, तूने अपने ही सुहाग पर लात मारी, तूने अपनी आत्मा के साथ ही विश्वास घात किया। याद रख ! जब तूने अपना कपट व्यवहार नहीं छोड़ा है तो भरत भी अपनी राम-भक्ति को कदापि न छोड़ेगा।

हो गया होना लिखा था जो हमारे भाग्य में।
राम का सेवक चला अब राम के अनुराग में॥

[भरत का शीघ्रता से प्रस्थान, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कौशल्या का महल)

कौशल्या— **गाना**

तर्ज—गम दिये मुस्तकिल

करके सूना भवन, जा बसाया है वन, हाय बेटा,
कर गये राज-दरबार सून

(१) छोड़ कर देश तुम बन सिधारे-स्वर्गवासी हुए प्राण प्यारे
किसका लें आसरा, कौन सुनले व्यथा, भाग्य फूटा;
कर गये राज·····

(२) क्या कुशल आज जन-जन विकल है-सूने घर सूना महल है।
हाय संकट पड़े, लोग रोवें खड़े, सब्र छूटा, कर गये राज···

[भरत का गाते हुए प्रवेश]

भरत— गाना (तर्ज—सोहनी)

हाय किस्मत जिन्दगानी का मजा जाता रहा।
अब अयोध्या से हमारा आशरा जाता रहा॥
दोनों भाई क्या गये मानो अयोध्या लुट गई।
जानकी के साथ साधन जान का जाता रहा॥
हाय आशाओं की दुनिया लुट गई इक बार ही।
छा गया अन्धेर घर का चान्दना जाता रहा॥
मैं भी जाऊंगा वहीं जिस जा 'कुशल' मम प्राण हैं।
क्या करूँगा रह के यहां जीवन मरा ज़ाता रहा॥

भरत—माता जी प्रणाम !

कौशल्या—(भरत को छाती से लगाकर) आओ बेटा !
गये हैं राम बन को हाय कैसा भाग्य है हेटा।
लगालूं तुझको छाती से भरत तू ही मेरा बेटा॥

भरत—माता जी !
दिखाती हो मुझे किस वास्ते ये भाव ममता के।
हूं बेटा आप का पर योग्य हूं माताजी घृणा के॥

कौशल्या—ऐसी बातें क्यों करते हो भरत ! इतने व्याकुल किस लिये हो रहे हो ?

भरत—आह माता जी !
सिर पर गिरे पहाड़ तो रोना कहां न हो।
लग जाए घर में आग तो क्योंकर धुआं न हो ?

कौशल्या—हां बेटा ! जब बुरा समय आता है, तो न होने योग्य कार्य भी हो जाता है ।

भरत—माता जी ! मैं कितना नीच हूं । मैं कितना दुष्ट हूं ! मेरे कारण ही राम को बन जाना पड़ा, मेरे कारण ही पिता जी का स्वर्ग-वास हुआ और मेरे कारण ही आपने यह सन्ताप भोगा ! हाय कैकेयी ! तू बांझ क्यों न रह गई तेरी कोख से जन्म लेते ही मेरा काल क्यों न आ गया ।

सहन करने न पड़ते इस तरह अपमान के बदले ।
यदि तू मांग लेती मौत ही वरदान के बदले ।।

कौशल्या—बेटा ! माता को क्यों दोष देते हो ? यह सब हमारे भाग्य की लीला है, हमारे कर्मों का खेल है ।

भरत—ठीक है ! माता जी ! आप को मुझ पर अवश्य सन्देह होगा और होना भी चाहिये, परन्तु मैं आपको कैसे समझाऊं, आपके मन को कैसे विश्वास दिलाऊं । बस केवल इतना कहना चाहता हूं कि । :-

जो पातक मित्र को होता है छल से विष पिलाने में ।
गऊ को कष्ट देने में गुरु का घर जलाने में ।।
जो पातक स्त्री बालक के होता खून बहाने में ।
धर्मशाला, पिता और ब्राह्मण का धन चुराने में ।।
मुझे वे पाप लग जायें मुझे दुष्कर्म प्यारा हो ।
यदि इस काम में माता जरा मेरा इशारा हो ।।

कौशल्या—यह तुम क्या कहने लगे भरत ! मैं जानती हूं कि :—

भरत निज राम भक्ति को कभी भी खो नहीं सकता ।
मुझे सन्देह सपने में भी तुम पर हो नहीं सकता ।।

[वशिष्ठ जी का प्रवेश]

वशिष्ठ—बेटा भरत ! शोक छोड़ो, मन को शान्ति दो ! और सबसे पहले महाराज के मृतक शरीर का दाह संस्कार करो ।

भरत—आप का वचन यथार्थ है गुरुदेव ! चलिये मैं अभी चलता हूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(अयोध्या की राजसभा)

कौशल्या—बेटा भरत ! राज्य-कार्य में बाधा पड़ रही है, दिनों-दिन शासन की व्यवस्था बिगड़ रही है, इस लिये अब मन को समझाओ और उत्तम रीति से राज्य कार्य चलाओ।

भरत—माता जो यह कैसे हो सकता है ? जिस राज्य पर भ्राता रामचन्द्र जी का अधिकार है, उस का मैं कैसे अधिकारी बन सकता हूं।

बिछड़ कर प्राण से इस देह का जीवन कहां होगा।
करूंगा राज अपना राम का दर्शन जहां होगा॥

वशिष्ठ—भरत ! अज्ञानता को छोड़ो, भ्रम में न पड़ो ! होनी प्रबल है, परमात्मा का नियम अटल है; जो बीत गया उसे भूल जाओ और आगे जो कुछ करना है, उसमें मन लगाओ देखो—

मणि बिन नाग, चन्द्र बिन रजनी, बिन दीपक का घर जैसे।
कमल बिना ज्यों ताल है सूना, राजा बिना नगर ऐसे॥
जीवन-मरण, लाभ और हानि, अटल है नियम विधाता का।
तजो शोक सन्ताप भरत अब करो ध्यान कुछ जनता का॥

भरत—गुरुदेव ! आप का उपदेश बडा उत्तम है किन्तु सुगन्धि निकल जाने पर पुष्प किस काम का रहता है, प्रकाश न रहने पर दीपक को दीपक कौन कहता है

न भूषण जिस तरह कोढ़ी की शोभा को बढ़ाते हैं।
न जैसे भोग और आनन्द रोगी को सुहाते हैं॥
बिना जल मीन को जैसे न किंचित चैन आता है।
यों ही बिन राम-दर्शन के न मुझको राज्य भाता है॥

वशिष्ठ—तुम्हारा यह वचन नीति के अनुसार है भरत, परन्तु यह तो सोचो कि दीन प्रजा को किस का आधार है :—

उमड़ता ही रहेगा शोक का प्रवाह जनता का ।
न होगा राज शासन के बिना निर्वाह जनता का ॥

वशिष्ठ—

गाना

ज्ञानी हो भरत देखो दुर्भाग्य का रोना क्या ?
भावी है प्रबल बेटा सन्ताप का होना क्या ॥
भगवान की लीला को सोचो तो जरा समझो ।
मानव को बनाया है किस्मत का खिलौना क्या ॥
जीवन न मरण अपना, संसार है इक सपना ।
हर बार निराशा में फिर मन को डबोना क्या ॥
आकाश से जब दुख के बादल ही नहीं छटते ।
फिर शोक मनाना क्या सन्तोष का खोना क्या ॥

भरत—गुरु जी ! एक तो मैं कैकेयी का पुत्र, दूसरे राम के बनवास का कारण और फिर पिता की मृत्यु का कलंकी ! इतना कुछ होते हुए भी प्रजा मेरे राज्य में क्या सुख पायेगी, यदि मैं गद्दी पर बैठा तो पृथ्वी रसातल को चली जायेगी । :—

मेरे कारण ही सब लोगों ने जब सन्ताप यह भोगा ।
तो जनता को कहाँ आनन्द मेरे राज्य में होगा ॥

कौशल्या—किन्तु बेटा ! राम तो अब बनों से वापस आने वाले नहीं !

सुमन्त—हां, यदि वे ऐसे होते तो हम लोग ही बहुत कुछ समझा लेते, ऊंच-नीच का मार्ग दिखा कर मना लेते, किन्तु वे ऐसा कब करते हैं ? पिता-आज्ञा को कैसे तोड सकते हैं ?

भरत—मैं हाथ जोड़ूंगा, मैं पैर पकड़ूंगा, मैं विनती करूंगा, चरणों में सिर धरूंगा, क्या उन्हें फिर भी दया न आयेगी !

वे दयालु हैं दुखी देख न पाएगे मुझ ।
है यह विश्वास कि छाती से लगाएगे मुझे ॥

वशिष्ठ—परन्तु बेटा ! राम परम दयालु और महा कृपालु होते हुए भी अपने वचनों पर अटल रहने वाले हैं, प्रत्येक दशा में पर्वत के समान निश्चल रहने वाले हैं।

यदि ऐसे न होते राम तो क्यों यह दशा होती।
न दशरथ का मरन होता न जनता को व्यथा होती ॥
मुझे विश्वास है उनका नहीं झूठा कथन होगा।
कहा इक बार जो मुख से वहीं अन्तिम वचन होगा ॥

भरत—आप सत्य कहते हैं गुरुदेव ! परन्तु जिसके केवल राम ही हों, वह उनका वियोग कैसे सह सकता है ? जिसका केवल एक ही सहारा हो वह उनके बिना कैसे रह सकता है ?

नहीं मेरे लिये जग में ठिकाना दूसरा कोई।
जा छोड़ू राम-चरणों को नहीं है आसरा कोई॥

वशिष्ठ—तो तुम राम के पास जाए बिना नहीं मानोगे ?

भरत—नहीं ! जब तक प्राण हैं तब तक नहीं।

वशिष्ठ—अच्छा ! तो चलने की तैयारी करो और सारा संकोच छोड़ कर रामभक्ति के अधिकारी बनो ! आज हमें निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि तुम राम के परम भक्त हो।

कौशल्या—बेटा ! तुम्हारा राम-प्रेम संसार में विख्यात रहेगा।

सुमन्त—निःसन्देह विचार बड़ा सुन्दर है, सम्भव है अयोध्या के फिर भाग्य खुल जाएं।

भरत—मन्त्री जी ! अब इन बातों को छोड़िये और शीघ्र बन चलने की तैयारी कीजिये।

सुमन्त—बहुत अच्छा ! मैं अभी सारा प्रबन्ध किये देता हूं।

[जाना, परदा गिरता ,

दृश्य छठा

(शृंगवीरपुर)

[निषादराज गूह कुछ सभासदों के साथ बैठे हैं। दूत आता है]

दूत—(आकर) महाराज की जय हो ! एक आवश्यक समाचार लाया हूं।

गूह—कहो ! क्या सूचना है ?

दूत—महाराज अयोध्या के नये राजा भरत असंख्य सेना लिये इसी ओर आ रहे हैं ?

गूह—हैं ! राजा भरत आ रहे हैं ! क्या किसी शत्रु पर आक्रमण करने का विचार है !

दूत—यह कुछ नहीं कहा जा सकता महाराज !

गूह—(स्वयं) कुछ समझ में नहीं आता ! ईश्वर ही जानता है कि भरत का क्या निश्चय है। कहीं उसने यह न विचारा हो कि राम-लक्ष्मण को मार कर शान्ति से राज्य करूं ! आखिर कैकेयी का बेटा है। विष की बेल में विषैले फल ही लग सकते हैं ? अग्नि से शीतल झोंके कैसे निकल सकते हैं ?

मन्त्री—महाराज वे तो अयोध्या के होने वाले सम्राट हैं।

गूह—हां हां ! यही तो मैं भी सोच रहा हूं। कहीं वह अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिये प्रभु रामचन्द्र के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र तो नहीं रचना चाहता।

सेनापति—हो सकता है कि उन का ऐसा ही विचार हो।

गूह—ठीक है ! हमें अवश्य सावधान हो जाना चाहिये।

गाना

वीरो ! हो जाओ तैयार।
सर सर सर सर चल सरोही, झनक झनक तलवार ॥ वीरो०
धनुष-बाण और बरछी भाले, छुरी कटीली धार।
नेजे और कटार सम्भालो, करो मार ही मार ॥ वीरो०

घाट रोक दो शीघ्र डुबा दो, नाव सहित पतवार।
राम हमारे कुशल देवता, दोनों के आधार॥ वीरो०

दूत—(आकर) महाराज ! युद्ध का विचार छोड़िये। भरत जी का इरादा लड़ाई करने का नहीं है। वे रामचन्द्र जी से भेंट करने जा रहे हैं।

गूह—सम्भव है तुम्हारा विचार ठीक हो, इसलिये पहले भरत जी से मिलकर उनका भाव ज्ञात कर लेना चाहिये।

मन्त्री—वह देखिये ! भरत जी गुरु वशिष्ठ सहित इसी ओर आ रहे हैं।

गूह—(प्रणाम करके) महामुनि वशिष्ठ और महाराज भरत के चरणों में दास का प्रणाम स्वीकार हो।

भरत—गुरु जी ! यह कौन व्यक्ति है ?

वशिष्ठ—बेटा ! यह गुह नामक निषादराज शृङ्गवीरपुर का राजा और राम का प्यारा सखा है।

भरत—(निषादराज को गले लगाकर) आइये, निषादराज ! आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गूह—महाराज ! मैं कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूं। सब प्रकार से पतित समझा जाता हू आप का महा अनुग्रह है जो आप ने अपने चरणों मे इस भूमि को पवित्र बनाया। कहिये, इतनी सेना लेकर किस ओर को गमन है ? यदि आज्ञा हो तो सेवक भी सेवा के लिये तैयार है।

भरत— गाना तर्ज—जब छोड़ चले श्री राम अवध को

टेक—क्या पूछो हो महाराज हमारी, चिन्ता मन को भारी।

अन्तरा (१) माता ने पाप कमाया, मेरा आधार मिटाया।
राजा ने प्राण गंवाया और लुट गई अयोध्या सारी॥
क्या पूछो हो.....

(२) श्री राम गये हैं बन को, संग में लेकर लक्ष्मण को।
अब धीर नहीं है मन को. सीता माता साथ सिधारी ॥
क्या पूछो हो·····

(३) कैसे हो दुख का वर्णन, महाराज ने त्यागा जीवन।
सन्तोष करे अब धारण क्या कौशल्या मात विचारी ॥
क्या पूछो हो·····

(४) सेवा में उनकी जाकर, चरणों में शीश नवाकर।
लाऊं वापस लौटाकर, मन में कुशल यही अब धारी ॥
क्या पूछो हो·····

गुह—निस्सन्देह महाराज ! आपका विचार बड़ा पवित्र है।

भरत—अच्छा तो निषादराज जो ! अब हम लोगों के पार होने का प्रबन्ध कीजिये और यदि सम्भव हो तो आज ही गंगापार कर दीजिये।

गुह—महाराज ! आज विश्राम कीजिये प्रातःकाल सब प्रबन्ध हो जायगा और यह सेवक भी आपके साथ जायगा।

भरत—अच्छा, तो जैसी तुम्हारी इच्छा।

[परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(बाल्मीकि ऋषि का आश्रम)

राम—(आकर) योगेश्वर वाल्मीकि जी, प्रणाम !

बाल्मीकि—चिरञ्जीव रहो ! पधारिये महाराज, पधारिये ! हे रघुकुल भूषण ! आपने बनों को कैसे सुशोभित किया ?

राम—ऋषिराज ! किसी समय हमारी माता कैकेयी ने महाराज से दो वरदान पाए थे। सोई उन्होंने एक में छोटे भाई भरत के लिये राज्य और दूसरे में मेरे लिये वन-वास मांग लिया। मैंने पिता जी की आज्ञा में अपना कल्याण जानकर सहर्ष स्वीकार

किया। ये छोटे भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीता जी भी साथ ही आए हैं।

बाल्मीकि—क्यों न हो राम ! आप रघुवंश की ध्वजा और वेदों का पालन करने वाले हैं। आप की माया जानकी और बड़े वेग वाले शेषनाग आपका संग कैसे छोड़ सकते हैं ?

राम—ऋषिराज ! अपना कल्याण, पिता की आज्ञा, माता का हित और आपके दर्शन सब मुझे बन-गमन से प्राप्त हुए। फिर मुझसे अधिक भाग्यशाली और कौन होगा ?

बाल्मीकि—निस्सन्देह ! आप का बनवास, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों का देने वाला है। हे तात ! यदि आप ऐसा न करते तो संसार का कल्याण किस प्रकार होता ?

राम—महाराज ! भ्रमण करते-करते बहुत समय बीत गया, अब कृपा करके कोई ऐसा स्थान बतला दीजिये जहां मैं जानकी तथा लक्ष्मण सहित जाकर विश्राम कर सकूं।

बाल्मीकि—महाराज ! आप तो सर्वव्यापी हैं। ऐसा कौन सा स्थान है जहां आप का वास नहीं। फिर भी आप मुझ से पूछते हैं। तो सुनिये जो मनुष्य आपकी कथा सुनते-सुनते तृप्त नहीं होते आप उनके हृदय में वास कीजिये। जो अपने नेत्र रूपी चातक द्वारा आप के दर्शन रूपी मेघ की अभिलाषा करते हैं आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनकी जिह्वा आप के गुणों का बखान करती हुई नहीं थकती आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनकी नासिका आपके पवित्र प्रसाद की सुगन्धि सूंघती रहती है आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनका शीश देवता, गुरु और महात्माओं के चरणों में नम्रता से झुकता है आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनके चरण तीर्थों की यात्रा करते रहते हैं आप उनके हृदय में वास कीजिये। जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष और दंभ को त्याग कर आपकी शरण में जाते हैं आप उनके

हृदय में वास कीजिये, जो दूसरे के धन को पत्थर और दूसरे की स्त्री को माता समझते हैं—आप उनके हृदय में वास कीजिये।

गाना

ओ कण कण में रमने वाले, किस ठौर नहीं है वास तेरा।
तारों में जगी है जोत तेरी, फूलों की हंसी में हास तेरा॥
चलता है पवन के झोके में, बहता है नदी के धारे में।
है आग में गर्मी तेरी ही, नभ, धरणी बीच निवास तेरा॥
रहने का ठिकाना बतलाऊं, सूरज को दीपक दिखलाऊं।
इक बूंद से सागर बन जाऊं, उपहास मेरा उपहास तेरा॥
प्राणों में कुशल आलोक जगा, सांसों में तेरा ही तार बंधा।
ससार उजागर तेरी कला, आकाश, रसातल वास तेरा॥

राम—महाराज! इन बातों को छोड़िये! केवल सांसारिक दृष्टि में कोई रहने का ठिकाना बतला दीजिये।

बाल्मीकि—अच्छा भगवन्! यदि यही इच्छा है तो आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये। वहां का बन सुन्दर है, मन्दाकिनी का निर्मल जल बहता है; हाथी, सिंह, हिरण सब स्वतन्त्रता से विहार करते हैं और अनेक ऋषिजन आत्मकल्याण की साधना में लीन रहते हैं। आपको वहां बड़ा आनन्द प्राप्त होगा।

राम—धन्य हो महाराज! अच्छा अब आज्ञा दीजिये।

बाल्मीकि—अच्छा भगवान्! आज मेरी भी साधना सफल हो गई! मैं कृतार्थ हुआ।

[राम, लक्ष्मण, सीता का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(चित्रकूट पर्वत)

[सीता जी एक कुटी में बैठी हैं। राम-लक्ष्मण एक वृक्ष के नीचे खड़े बातें कर रहे हैं]

राम— **गाना**

लक्ष्मण ! चित्रकूट मन भाया ।
सुन्दर शोभा वन उपवन की देखत मन हर्षायो ।। लक्ष्मण···
सारिता-सर प्रति ताल मनोहर कमल सहस दल छायो ।
मन्दाकिनि-जल स्वच्छ सुधामय निर्मल परम सुहायो ।। लक्ष्मण···
शीतल मन्द सुगन्धित बहता पवन हृदय पुलकायो ।
पक्षीगण मृदु बोल बोलते मन विहरत ललचायो ।. लक्ष्मण···
फूलत फलत विटप बहुरंगे देखत कल्प लजाओ ।
पर्ण कुटी में तापस त्यागी योग-जाप मन लाया ।। लक्ष्मण··
कुंज कुज की शीतल छाया स्वर्ग-मोद सरसायो ।
शोभा अनुपम देख कुशल यह आज अवध बिसरायो ।। लक्ष्मण···

लक्ष्मण—निस्सन्देह भ्राता जी ! चित्रकूट तो बड़ा ही रमणीक स्थान है। पर्वत की हरियालो, नदी का प्रवाह और पक्षियों की मधुर ध्वनि कहती है कि शोभा की खान है।

राम—किन्तु ये पशु-पक्षी इस स्वर्ग को छोड़ कर अकस्मात क्यो भागने लगे ? इन पर ऐसी क्या आपत्ति आई है जो ऐसे मनोहर स्थान को त्यागने लगे ! जरा देखो तो सही कि क्या बात है ?

लक्ष्मण—(एक वृक्ष पर चढ़ कर) भ्राता जी ! कुछ दूर पर बड़ी धूल छा रही है मानो घटा घिरी चली आ रही है। और वह देखो! सूर्यवंशी झण्डा वायु मण्डल में लहरा रहा है; ऐसा प्रतीत होता है कि भरत सेना सहित आ रहा है।

राम—तो आने दो ! अवध छोड़ती बार भरत से भेंट न हो पाई थी, एक बार उनको भी देख लेंगे।

लक्ष्मण—ऐसी बात नहीं है महाराज ! प्रतीत होता है कि उसे डाह [illegible] रोग सता रहा है जो इतनी विशाल सेना साथ ला रहा है।

चौपाई

सुनहु तात तुम शील सुभाऊं ।
जगत-कपट-छल-छिद्र न जाऊं ।।
यद्यपि भरत परम अनुरागी ।
लोभ विवश भरमत जन त्यागी ।।
स्वार्थ महा लम्पट जग मांही ।
शत्रु मित्र कछु जानत नाहीं ।।
नागिन-पुत्र नाग पुनि सोई ।
कैकेयी पुत्र सरल कंह होई ।।

राम—

दोहा

तात लखन भाकत कहा, वचन विषम अनुरीति ।
चन्द्र न त्यागे अमिय रस—भरत न त्यागे प्रीति ।।
गंगा बहे उत्तर—दिशा, पूरब डूबे भानु ।
कपट न आवे भरत-हिय, यह निश्चय करि जानु ।।

भरत—(अकेला दौड़ता हुआ आता है) रक्षा! हे नाथ रथा ! हे स्वामी रक्षा !

दुखी मन और दुखी हृदय पै अब करुणा करो स्वामी ;
शरण में आ पड़ा हूं मैं, मेरी रक्षा करो स्वामी ।।

राम—(उठाकर और गले लगाकर) :—

दुखी क्यों इस तरह होते हो धीरज तो धरो भाई ।
पड़ा है कष्ट क्या तुम पर जरा वर्णन करो भाई ।।

गाना

बताओ शोक क्या तुमको भरत किसके सताये हो ।
दुखी होकर भला किस वास्ते जंगल में आये हो ?
तुम्हें चिन्ता है क्या व्याकुल हो इतने किस लिये भाई?
बिलखते हो, सिसकते हो, दुखी हो, तलमलाये हो ।।

है त्यागा किस लिये तुमने बताओ चैन महलों का।
अयोध्या को वहां किसके सहारे छोड़ आये हो ?
तसल्ली कौन माताओं को देगा और खबर लेगा ?
बुढ़ापे में कुशल का भी सहारा तोड़ आये हो ।।

भरत—

गाना

टेक—आये नाथ क्यों छोड़ भरत को क्या अपराध विचारा ?
अन्तरा (१) क्या दोष है मेरा स्वामी, त्यागा क्यों अन्तर्यामी ?
मैं दिन काटूं किस भाँति भला किसका है मुझे सहारा ।।
(२) नगरी का कौन सहाई, यह सुनो जरा रघुराई।
जब रूठ चले प्रभू आप अवध से सुख सन्तोष सिधारा ।।
(३) बस दोष मेरे बिसराओ-अपनी करुणा दिखलाओ।
सब लौट चलो अब कुशल अवध को है आधार तुम्हारा।।

राम—भाई भरत ! इतने व्याकुल न हो ! शान्ति से काम लो क्या कर्मों की गति टाले टल सकती है ?

भरत—ठीक है, प्रभो ! किन्तु आपके बिना मेरा निर्वाह नहीं

गाना—(तेरी करना कुटिल···)

टेक—बिसारा नाथ जब तुमने, मेरा फिर क्या ठिकाना है ?
अन्तरा (१) दीन दुखी त्यागा भरत, आये नाथ सिधार।
कौन अयोध्या में मेरा तुम बिन है आधार ।।
जो अपना है बेगाना है—मेरा फिर क्या·····
(२) लुट गई सारी सम्पदा, सब सुख के सामान।
तुम बिन हे भ्राता! भरत,हो गया आज विरान।
सभी दुशमन जमाना है-मेरा फिर क्या·····
(३) जब से मुझ को त्याग कर आये मुंह को फेर।
सकल नगर में छा गया तभी कुशल अन्धेर ।।
महल उजड़ा डराना है—मेरा फिर क्या·····

शत्रुघ्न—(आकर) महाराज, आप का सेवक शत्रुघ्न !

राम—(उठकर) ओहो भाई शत्रुघ्न ! तुम भी क्यों रोते हो ? तुम्हारे रक्षक भरत तो तुम्हारे साथ हैं।

शत्रुघ्न—महाराज ! आप के वियोग में अयोध्या उजड़ चुकी है; नर-नारी दुखी हो रहे हैं; पशु-पक्षी प्राण खो रहे हैं।

गाना

टेक—प्रभा बिन नगर बना शमशान।

अन्तरा (१) गली, पंथ, बाजार हैं सूने, सूनी हाट दुकान।
महल, अटारी, आंगन सूने, सूने राज दिवान॥
प्रभो बिन·····

(२) बालक भूले खेल-तमाशे, नारी मगल गान।
सकल अयोध्या,दुख की प्रतिमा,ज्यों काया बिन प्राण॥
प्रभो बिन·····

(३) कमल सुखाने, ताल डराने, वन-उपवन सुनसान।
पक्षी भूले शोर मचाना, मृग भूले जलपान॥
प्रभा बिन·····

(४) खेती बाड़ी, फल फुलवारी सूख भये निष्प्राण।
गौओं ने तृण चरना छोड़ा, बछड़ों ने पयपान॥
प्रभो बिन·····

राम—भाई शत्रुघ्न ! इतने अधीर न बनो, मेरा एक उपदेश सुनो।

गाना (फूल रही फुलवार·····)

टेक—होकर चतुर सुजान—करत काहे मन भारी।

(१) सुख, दुख, मंगल और अमगल,आवत जात निरन्तर पल २
भ्राता स्वप्न समान—करत काहे मन···

(२) रेख पड़ो जो भाग्य मिटे ना,विधि,हरि हर भी टाल सके ना
कर्म-भोग बलवान—करत काहे मन···

(३) नाचें ये ससारी पुतले, कर्म नचावें डोरी बांधे
जग पुतली-घर जान—करत काहे मन···

(४) ढूंडे किस का जीव सहारा, कुशल नदी का दूर किनारा।
मिलन-वियोग समान-करत काहे मन···

शत्रुघ्न—यह सब ठीक है—परन्तु नाथ ! जिस प्रकार जल के बिना मछली, मणि के बिना नाग और पति के बिना सती का जीवन निरर्थक और निस्सार होता है, उसी प्रकार आपके वियोग में सारा नगर आठ-आठ आंसू रोता है।

गूह—(आकर और प्रणाम करके) महाराज ! आपके विरह ने सब को दुखी बनाया है, इसलिये दर्शनों के लिये सारा नगर उमड़ आया है।

राम—तो क्या प्रजावासी भी आये हैं ?

भरत—हाँ प्रभो ! प्रजावासी ही नहीं, मातायें और गुरु वशिष्ठ जी भी पधारे हैं।

राम—अहोभाग्य ! चलो पहले उनके दर्शन करलें।

गूह—लीजिये महाराज ! वे सब लोग तो स्वयं ही आ पहुंचे।

राम—(प्रणाम करके) श्रद्धेय गुरु जी प्रणाम !

विशिष्ठ—चिरंजीव रहो पुत्र ! कल्याण हो !

राम—(कैकेयी के पैर छूकर) माता जी प्रणाम !

कैकेयी—(चुप)

राम—मातेश्वरी ! अपने पुत्र राम को आशीर्वाद दीजिये और बीती बातों का ध्यान न कीजिये। जो कुछ भी हुआ है सब काल और कर्म के अनुसार हुआ है, इसमें आपका क्या दोष है ?

कैकेयी—(चुप)

राम—माता जी ! बोलती भी नहीं। क्या अपने राम को इतना भुला दिया ? बोलो मां, तुम्हें राम की सौगन्द बोलो।

कैकेयी— **गाना** (लावनी)

क्या कहूं राम ! कुछ नहीं कहा जाता है।
चुप रहूं ! नहीं बिन कहे रहा जाता है॥

कर्मों की गति का भेद कोई क्या जाने।
होनी करती है खेल सदा मन माने॥
जिस को जग में अपयश मिलना होता है।
मिल कर रहता है, जीव वृथा रोता है॥
तुम को तजकर घर-बार यहां आना था।
मुझ को पापिन, निर्दयी नाम पाना था॥
बन गई घृणा की पात्र हाय जन-जन की।
क्या जन्म-जन्म तक आग बुझेगी मन की॥

राम— जो कुछ भी तुमने कहा सत्य है माता।
कर्मों का फल है जीव निरन्तर पाता॥
जब होनी के सब खेल तुम्हीं बतलाओ।
फिर दोष तुम्हारा रहा कौन समझाओ॥
है कर्म-चक्र में बंधा हुआ जग सारा।
इसलिये वृथा है पश्चाताप तुम्हारा॥
अब इन बातों से होता है दुख भारी।
है-वत्स तुम्हारा राम हो तुम महतारी॥

कैकेयी— हे तात! धन्य तुम, धन्य तुम्हारी वाणी।
तुमने डाला मन की ज्वाला पर पानी॥
है सत्य जीव करनी अपनी पायेगा।
पर दुनिया को विश्वास कहां आयेगा॥
थूकेगा सारा लोक मेरी करनी पर।
इक महा अधर्मिन जन्मी थी धरणी पर।
बतलाओ मुझ को चैन कहां आयेगा।
मर कर भी यह सन्ताप नहीं जायेगा॥
रघुकुल में आई ऐसी नीच अधर्मिन।
ससार कहेगा दुष्टा, अधम, कुकर्मिन॥

राम— कहने दो कोई झूठ अगर कहता है।
मेरे मन को सन्तोष सदा रहता है॥

जिसकी है जग में भरत सजीव निशानी।
वह माता क्या है देवी मात भवानी।
जिसमें जग का कल्याण छिपा होता है
उससे उत्तम बतलाओ क्या होता है॥
जब ज्ञानी जन यह तत्व जान लेवेंगे।
तुम निर्दोषी को दोष नहीं देवेंगे॥
है विनय मेरी यह कृपा मात दिखलाओ।
अब भरत सहित सब लौट अयोध्या जाओ॥
सूना है माता राज—दुखी है जनता।
बिन राजा के सुख-साधन कब है बनता॥

वशिष्ठ—धन्य है! आर्य वीरों के इन पवित्र विचारों का जोड़ संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। ऐसी ही उच्च भावनाओं के कारण भारत को देव-भूमि कहा गया है।

कौशल्या—बेटा! तुम्हारा बनवास किस प्रकार कटता होगा? हाय विधाता! मेरे कोमल किशोरों को कैसी कठिन परीक्षा में ला डाला!

राम—माता जी! आपके चिन्तित होने का कोई भी कारण नहीं। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है, इसमें भाग्य को बुरा कहना या विधाता पर दोष लगाना किसी प्रकार उचित नहीं।

कौशल्या—ठीक कहते हो बेटा? यह सब कर्मों का ही तो फल है कि एक ओर तो तुम वन को पधारे और दूसरी ओर तुम्हारे पिता परलोक सिधारे।

राम—हैं? क्या पिता जी का स्वर्गवास हो गया? निस्सन्देह अब अयोध्या बिल्कुल बेसहारे हो गई।

सीता जी—(सिर पीटकर) हाय पिता जी! आप भी हमें छोड़कर चले गये—

गाना

टेक—विधाता, कौन करम का फेर।

रैन अन्धेरी शोक घटाएं चारों ओर अन्धेर ।। विधाता०

१—आशाओं का महल बनाया सपनों का गढ़ घेर ।
पाप करम की आई आंधी छिन में माटी ढेर ।। विधाता०

२—राज-पाट, सुख सम्पति नाना धन-माया के ढेर ।
आंख खुली तो कुछ नहीं देखा खाली हाथ सवेर ।। विधाता०

३—नाम न जाने ग्राम न जानें पथ चले हैं देर ।
छोड़ चले हैं संग बटोही मारग में अन्धेर ।। विधाता०

लक्ष्मण—

गाना

ओ भाग्य-चक्र ? तूने यह घर जला ही डाला ।
था एक हा सहारा वह भी मिटा ही डाला ।
रघुकुल में जल रहा था इक दीप टिमटिमाता ।
आंधी ने मौत का वह दीपक बुझा ही डाला ।।
बनवास राम को दे राजा के प्राण लेकर ।
मंगल में यह अमगल आखिर रचा ही डाला ।।
जनता अनाथ, नगरी निर्दोष, देश सूना ।
सब के गले कुशल यह खन्जर चला ही डाला ।।

[रोना]

वशिष्ठ—बेटा ? शान्ति करो । विलाप करके मृतक की आत्मा को दुख न पहुंचाओ ।

राम—गुरु जी ? आपका उपदेश कल्याणकारी है । इस लिये अब कृपा करके इन सब को लेकर अयोध्या लौट जाइये ।

वशिष्ठ—बेटा ? मैंने भरत को पहले ही बहुत समझाया परन्तु इन की राम-भक्ति के सामने हमारा कोई बस न चल पाया ।

राम—(भरत से) प्यारे तात ? अब तुम ही विचार कर ऐसा कार्य करो जिससे माताओं को शान्ति और प्रजा को सुख मिले—

सहारे उठ गये सारे तुम्हीं आधार हो इनका ।
करो वह यत्न अब भाई कि फिर उद्धार हो इनका ।।

भरत—सुनिये प्रभो ?

गाना (लावनी)

दोहा—नाथ सदा से आपने किया मेरा उपकार।
दोष किसी का कुछ नहीं पड़ी भाग्य की मार।।
हो आप प्रभो, सीता माता, गुरुदेव का सिर पर साया है।
हूं सत्य सभा में खड़ा हुआ चरणों में सीस झुकाया है।।
नगरी व्याकुल, खोटी माता और पिता ने प्राण गंवाए हैं।
सब भंग पड़ा आनन्द गया और आप बनों में आए हैं।।
सौगन्ध तुम्हारे चरणों की और शकर की है आन मुझे।
आनन्द नहीं कुछ प्यारा है और राज है विष की खान मुझे।।
कुल दुनिया ताने देवेगी और निन्दा सब संसार करे।
बन में तो बास करें स्वामी और सेवक रंग-विहार करे।।
दोहा—बार-बार विनती करूं, चरण नवाऊं माथ।
है इच्छा मन की कुशल, चलो अवध को नाथ।।

राम— गाना (लावनी)

सुनो भरत गत जीव की, है ईश्वर आधीन।
क्यों रो-रो व्याकुल हुए मन को किया मलीन।।
जो करें जरा शङ्का तुम पर वे जग में अपयश पायेंगे।
परलोक में भोगें दुःख कठिन और घोर नरक में जायेंगे।।
जो प्रेम तुम्हारे मन में है मैं उसको खूब समझता हूं।
पर पिता ने आज्ञादी मुझको इस कारण तात झिझकता हूं।।
मैं पूरी कर दिखला देता जो तुमने बात विचारी है।
पर सत्य से अपने गिरता हूं इसलिये मुझे लाचारी है।।
तत्काल मिलूंगा तुम से मैं वापस आ तात तपोवन से।
अब लौट अयोध्या जाओ तुम, संकोच दूर करके मन से।

भरत —नाथ! अपना दुर्भाग्य, माता का पाप, विधाता की गति और समय की कुटिलता के कारण मेरा मन अत्यन्त दुखी हो रहा है। मुझे चारों ओर अन्धकार दिखाई देता है। जिस प्रकार

यदि कोई मार्ग भूल जाए तो सूय का कोई दोष नहीं उसी प्रकार आप तो मुझे सत्मार्ग दिखाते हैं, सच्चे ज्ञान का उपदेश सुनाते हैं किन्तु मेर मन का शान्ति नहीं होतो :—

तुम्हीं हो आसरा मेरा तुम्हीं बन्धु सखा मेरे।
तुम्हीं स्वामी गुरु मेरे तुम्हीं माता पिता मेरे॥
अधिक तुमसे मेरा जग में न कोई नाथ प्यारा है।
तुम्हारे बिन अयोध्या में नहीं मेरा गुजारा है॥

राम—प्यारे भरत ! तुम तो धम और नीति के जानने वाल हो; मेरी अपनी और प्रजा को भलाई पहचानने वांले हो ? फिर यदि अयोध्या लौट कर प्रजा का पालन न करोगे तो मुझे शान्ति और जनता को सुख कैसे दोगे। इसलिए तात ! अब मन को अधिक न कल्पाओ और आनन्द पूर्वक अयोध्या को लौट जाओ। देखो :—

यही आज्ञा पिता की है यही है साधना अपनी।
इसी में हित तुम्हारा है यही है धारणा अपनो॥
वचन मेरा पिता-आज्ञा, पर्ण अपना निभाओ तुम।
करो मत देर अब भाई अवध को लौट जाओ तुम॥

भरत—परन्तु नाथ ! आप तो खोटों पर भो दया करने वाले हैं, बुराई के बदले भलाई चाहने वाले हैं। फिर क्या मेरे अपराध क्षमा नहीं हो सकते ?.

राम – क्या कहते हो भरत ! तुम अपराधी कैसे बन रहे हो ? तुम्हारा चरित्र तो परम पावन है। तुम्हारे नाम में तो मुक्ति का वास होगा; तुम्हारे बनाए हुए मार्ग पर चलकर तो ससार का कल्याण हो जायगा। भाई ! मैं तुम्हारी बात अवश्य मान लेता परन्तु क्या करूं धर्म का मार्ग ही बड़ा कठोर है, सत्य रक्षा में ऐसी ही कठिनाइयां आया करती हैं; याद करो:—

मोरध्वज ने सत्य पर बलिदान बेटे को किया।
सत्य पर हरिश्चन्द्र ने परिवार को भी तज दिया॥

सत्य पर राजा शिवी ने प्राण का सौदा किया।
सत्य के कारण हमें बनवास में आना पड़ा॥
सत्य का पालन करें हम यह ही सच्चा कर्म है।
याद रक्खो सब से ऊपर सब से ऊंचा धर्म है॥

भरत—यथार्थ है महाराज किन्तु जब मन नहीं मानता तो क्या करूं?

राम—मन को मनाना चाहिये। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे बिछोह में मुझे आनन्द मिलता है? नहीं, कदापि नहीं। भाई! मैं धर्म के विचार से ही तुम्हें छोड़ रहा हूं।

यह न समझो राम को तुम बिन यहां आनन्द है।
क्या करे पर राम अपने धर्म का पाबन्द है॥

चौपाई

सुनहु भरत मम सीख सुहाई।
बिनु धीरज सन्ताप न जाई॥
शोक हर्ष सपने सम जानो।
दुःख कबहुं मानत नहिं ज्ञानी॥
विधना भाग्य-रेख जा डारी।
होकर रहत टरत नहिं टारी॥
अस जिय जान हरहु मन पीरा।
वाद-विवाद तजेउ मति धीरा॥
निराधार पुरजन पितु-माता।
अवध अनाथ तजो नहीं भ्राता॥

दोहा—लौट जाओ मानो कहा, भरत हिय धरि धीर।
विवश विकल तुम बिनु महा वचन बद्ध रघुबीर॥

वशिष्ठ—बेटा भरत! राम अपने मार्ग से कदापि हटने वाले नहीं। धर्म-पथ पर अटल रहना ही वीर पुरुषों का लक्षण है। इस लिये अब इनकी आज्ञा का पालन करो और सावधान होकर अवध लौट चलो।

राम—हां भाई ! अब तुम्हारे लिये लौट जाना ही उचित है और फिर चौदह वर्ष का ही तो समय है अवधि बीत जाने पर फिर तुम से मिलूंगा ।

भरत—अच्छा भ्राता जी ! यदि आप की और गुरु जो की यही आज्ञा है तो मैं विवश हूं । किन्तु इतनी कृपा तो कीजिये कि मुझे अपनी खड़ाऊं प्रदान कर दीजिये । मैं इन से अयोध्या को गद्दी सजाऊंगा और स्वयं सन्यासियों का जीवन बिताऊंगा :—

राम के अनुराग में अब भरत सन्यासी बना ।
वास नगरी में करेगा किन्तु बनवासी बना ॥

वशिष्ठ—धन्य हो भरत ! तुम धन्य हो ! तुम दोनों साक्षात धर्म का अवतार हो । तुम ने दिखला दिया कि धर्म-पालन के सामने राज्य का कोई मूल्य नहीं !

एक वे हैं जो मर जाते हैं कट-कट राज पर ।
एक ये हैं जो लगा देते हैं ठोकर ताज पर ॥

राम—अच्छा प्यारे ! लो, मेरी खडाऊ ले जाओ ।

भरत—(खड़ाऊं सिर पर रख कर) अच्छा प्रभो ! आज्ञा दीजिए ! किन्तु याद रखिये कि यदि आप चौदह वर्ष से अधिक एक दिन भी लगायेंगे तो भरत को जीवित न पाएंगे !

राम—तुम निश्चिन्त रहो भरत !

[भरत जी का सब के सहित जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! चित्रकूट को अब सारे अयोध्यावासी जान गए हैं, इसलिये वे यहां आकर माया मोह बढ़ाने वाली बातें किया करेंगे और साथ ही यात्रा का कष्ट सहा करेंगे ।

लक्ष्मण—यथार्थ है महाराज ! यह स्थान वैसे भी अयोध्या से बहुत दूर नहीं है

राम—इस लिये यही उचित जान पड़ता है कि हम लोग आगे का

भ्रमण करें और अन्य स्थानों की यात्रा करके अनुभव लाभ उठावें।

लक्ष्मण—हां ! चलिये प्रभो ! अब यही सुन्दर है।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य नवां

(अत्रि ऋषि का आश्रम)

[राम, लक्ष्मण और सीता का प्रवेश]

राम—मुनिवर प्रणाम !

अत्रि—चिरंजीव रहो आर्य ! आइये पधारिये।

राम—महाराज ! महात्माओं के दर्शन में कल्याण छिपा रहता है। सत्संगति से लोहा भी स्वर्ण हो जाता है। हम लोग आप से कुछ शिक्षा प्राप्त करने आये हैं।

अत्रि—क्यों न हो ! रघुकुल भूषण के लिये ऐसे ही शब्द शोभा देते हैं। फूलों से तो सुगन्धि ही आया करती है।

राम—मुनिराज ! आप जैसे सन्तों के दर्शनों का लाभ उठाने के लिये फिरते-फिरते इधर आ निकले। कृपा करके हमें कोई उपयोगी उपदेश दीजिये।

अत्रि—विश्व के कण-कण में रमण करने वाले राम ! मैं आपको क्या उपदेश दूं ? आप तो मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। आपका शील स्वभाव पार्थ और महात्मा में भी कोई अन्तर नहीं देखता। जो निःस्वार्थ भाव से आपका हो जाता है, आप उसे भवसागर से पार कर देते हैं।

राम—ऋषिराज ! आपने अपने योगबल से ज्ञान और माया दोनों को जीत लिया है। मुक्ति आपके चरणों में लोटती है आप धन्य हैं। (सीता जी से) प्रिय ! माता अनूया पतिव्रताओं में आदर्शरूप हैं, इन से कुछ शिक्षा ग्रहण करो।

सीता—(अनसूया के पैर पकड़कर) माता जी ! नमस्कार करती हूं। मुझे अपना सुन्दर उपदेश दीजिये।

अनसूया—सुनो बेटी !

गाना (लावनी)

दोहा—सीता तुम तो आप हो सर्व गुणों की खान।
फिर भी मैं वर्णन करूं जो मेरा अनुमान॥

भाई-बन्धु, सुत, मात-पिता थोड़े दिन के हितकारी हैं।
नारी का उसके पतिदेव दोनों जग में सुखकारी हैं॥
वह नीच चरित्र है नार जो पति-सेवा से चित्त चुराती है।
इस लोक न सुख परलोक गति वह घोर नरक में जाती है॥
बूढ़ा हो, रोगी, मूरख हो, अंधा बहरा हो, निर्धन हो।
नटखट हो चाहे क्रोधी हो, सब शोक का चाहे कारण हो॥
उसको ही ईश्वर-सम समझे उसका ही मन में ध्यान करे।
उसकी सेवा में ही अर्पण मन, वाणी, बुद्धि, प्राण करे॥
धीरज, सेवक, भ्राता, नारी इन सबका ऐसा नाता है।
परखे जाते हैं ये चारों जब समय विपत का आता है॥

दोहा—सेवा स्वामी की करे तज कर कपट-विचार।
ऐसी नारी है कुशल धर्म-धुरन्धर-नार॥

सीता—धन्य हो माता जी ! आपके इस उपदेश को मैं जन्म पर्यन्त निभाऊंगी।

राम—(अत्रि से) अच्छा ऋषिराज ! अब आज्ञा दीजिये; आगे चल कर कुछ और महात्माओं के दर्शन पाएंगे और यदि कोई उचित स्थान मिल गया तो कुछ समय के लिये वहीं डेरा लगाएंगे।

अत्रि—महाराज ! मैं जाने के लिये कैसे कह सकता हूं ? आज तो मुझे जन्म-जन्म का फल मिल गया।

राम—अच्छा मुनिराज ! प्रणाम ! यदि अवसर मिला तो फिर दर्शन करेंगे ।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(अगस्त्य मुनि का आश्रम)

अगस्त्य— गाना

जगदीश दीन बन्धू करुणा निधान तुम हो,
प्रतिपाल, भक्तवत्सल, सन्तों की जान तुम हो ।
योगी जनों के प्यारे, निर्बल के हो सहारे,
ससार के उजारे, जीवों के प्राण तुम हो ।
जल-थल में बन-नगर में, पर्वत गुफा शिखर में,
सागर में ताल-सर में, बस विद्यमान तुम हो ।
वेदों के सार तुम ही, निर्गुण साकार तुम ही,
जीवन का तार तुम ही, शक्ति महान तुम हो ।

[राम, लक्ष्मण सीता का प्रवेश]

राम—मुनिराज ! सादर प्रणाम !

अगस्त्य—आयुष्मान् ! पधारिये रघुवंशमणि ! पधारिये !

राम—महाराज आप तो तीनों लोकों की बात जानने वाले हैं, फिर आप से हमारा अभिप्राय कैसे छिपा रह सकता है ?

अगस्त्य—हे साक्षात् ब्रह्म रूपी राम ! जिस पर आपकी कृपा हो जाती है, उसी को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, नहीं तो सारा जगत माया के अन्धकार म भटकता रहता है, निराशा मे सिर पटकता रहता है ।

राम—महाराज ! हम तो सन्त-सेवक हैं । हमें कोई सेवा करने का सौभाग्य दीजिये ।

अगस्त्य—भगवन् ! आपकी माया ने अनेक ब्रह्माण्ड और देवता-दानव रच डाले हैं । आपकी माया गूलर के वृक्ष के समान है । अनेक

लोग उसके अनेक फल हैं और सर्व प्रकार के चरचरा जीव उन फलों के कीड़े हैं, जो बाहर की लीला कुछ भी नहीं जानते। उन का नाश करने वाला काल भी उनको ताक में लगा रहता है परन्तु जिसको आप अपनी भक्ति दे देते हैं, वह इस माया जाल से छूट जाता है। इसलिये, हे नाथ! मुझे भी इस माया से मुक्त कर दीजिये—

गाना

निवारो माया का भ्रमजाल।
जिस माया में भ्रमते योगी, देव, दनुज दिग्पाल ॥ निवारो···
मरुस्थल में भ्रमता डोले जल पीछे मृगवाल ॥
तृष्णा रूपी दावानल में जल-जल हो बेहाल ॥ निवारो···
यह संसार अन्धेरी नगरी पंथ बड़े विकराल।
ज्ञान-जोति बिन माया-तम को जीव सके नहिं टाल ॥ निवारो···
राम-कृपा से माया-बन्धन टूट जाय तत्काल ॥
हरि-पद पङ्कज पाइ कुशल का कटे जगत-जंजाल ॥ निवारो···

राम—मुनिराज! योगियों और सन्तों का माया बेचारी क्या बिगाड़ सकती है? उनके लिये तो कल्याण का मार्ग सदैव खुला रहता है। अच्छा भगवान्! बनों में भ्रमण करते-करते हमें बहुत समय बीत गया अब कोई ऐसा स्थान बताइये जहां हम तीनों विश्राम कर सकें।

अगस्त्य—भगवान्! यहां से कुछ दूर दक्षिण की ओर पंचवटी नामक एक बड़ा मनोहर स्थान है। वहां पवित्र गोदावरी बहती है; अनेक प्रकार के फलदार वृक्ष हैं और पक्षियों का कोलाहल मधुर सगीत सुनाता रहता है। आप वहां जाकर विश्राम करें तो बड़ा सुख मिले।

राम—बहुत अच्छा महाराज! धन्यवाद!

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण और सीता जी बैठे गोदावरी की लहरों को देख रहे हैं।]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! पचवटी पर विधाता ने कैसी विचित्र रचना की है मानो प्रत्येक वस्तु जीवन का रस लेकर आई है।

राम—निस्सन्देह बड़ा ही रमणीक स्थान है, प्रत्येक दृश्य मानो शोभा की खान है।

सीता—प्राणनाथ ! इधर तो देखो ! ये पक्षीगण कैसी मधुर तान सुना रहे हैं और मृग प्रसन्न मुद्रा में चक्कर लगा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने सब को रसिक बना दिया है और प्रिय-मिलन का अलौकिक रस बहा दिया है।

राम—क्यों न हो ! संयोग की अवस्था का ऐसा ही रूप होता है प्रिय।

लक्ष्मण—भगवन् ! प्रकृति की इस अपूर्व रचना को देखकर मन में कुछ प्रश्न करने की इच्छा हो आई है। यदि आज्ञा हो तो पूछ लूं ?

राम—हां-हां ! अवश्य पूछो।

लक्ष्मण—हे नाथ ! माया का क्या रूप है ? और ज्ञान तथा वैराग्य किसे कहते हैं ?

राम—तात ! मैं और मेरा, तू और तेरा अर्थात् ये पदार्थ भी मेरे हैं, मैं भी कोई हूं, तू भी कोई है—यही माया है ! इन्द्रियों और मन से जिन पदार्थों का ज्ञान होता है वे सब माया के कहे जाते हैं। इस माया के दो रूप हैं एक अविद्या और दूसरा विद्या। अविद्या महा दुख देने वाली और संसार रूपी कुए में गिराने वाली है। दूसरी विद्या है जो ईश्वर की प्रेरणा से जगत को रचती है, केवल अपनी शक्ति से कुछ नहीं कर

सकती। जिस भावना से ज्ञान उत्पन्न होता और मनुष्य अभिमान को त्याग कर सब पदार्थों को नारायण-रूप देखता है वही पूर्ण वैराग्य है। धर्म से वैराग्य और याग से ज्ञान उत्पन्न होता है। यही मोक्ष का देने वाला है, और जिस साधन से शीघ्र ही मेरी प्राप्ति हो जाती है उसे भक्ति कहते हैं।

लक्ष्मण—महाराज ! भक्ति के क्या उपाय हैं ?

राम—वेद की रीति और धर्म के अनुकूल कार्य करना, समस्त कर्मों को भगवान के अर्पण कर देना, और उसी को आधार मानना-यही भक्ति के साधन हैं। जब विषयों से मन हटकर मेरे चरणों में लग जाता है तभी मेरी प्राप्ति होती है।

[स्वरूपनखा का गाते हुए प्रवेश]

स्वरूपनखा— गाना

(खोल दे बटवे की डोर···)

टेक—जोवन को आ गई बहार—मैं नई नवेली !

अन्तरा—चन्दा से मुखड़े पै काली-काली अलकें।
नागन सी करत विहार—मैं नई नवेली ॥

अन्तरा—चाल चलूं जब रूप बिखरता जावे।
लचके कमर सुकुमार—मैं नई नवेली ॥

अन्तरा—जब मुस्काऊँ मन काम का रिझाऊं प्यारे !
चितवन के तीर करूं पार—मैं नई नवेली ॥

(राम के पास आकर) सुन्दर राजकुमार तुम कौन हो ? क्या तुम वास्तव में मनुष्य हो ?

राम—देवी ? हम महाराज दशरथ के पुत्र अयोध्या के रहने वाले हैं और कुछ समय के लिये बनों में रहने आए हैं। ये सीता जी हमारी धर्मपत्नी और ये लक्ष्मण जी हमारे छोटे भाई हैं। कहिये आप कौन हैं ?

स्वरूपनखा—(मटककर) मैं हूं लङ्कापति महाराज रावण की बहिन। मेरे भाई खर और दूषण का यही साम्राज्य है और मेरा नाम स्वरूपनखा है।

राम—तो आप इस प्रकार भटकती क्यों फिर रही हैं ?

स्वरूपनखा—मैं फिर रही हूं पति की खोज में। मेरे योग्य आज तक कोई वर ही नहीं मिला, इसलिये मैं अभी तक कुंवारी हूं।

राम—किन्तु देवी ! वर की खाज करना तो माता-पिता या भाई बन्धु का काम है; स्त्रियों का तो अकेली घूमना भी नहीं चाहिये।

स्वरूपनखा—श्याम किशोर ! तुम कितने भोले हो ? यदि मैं घूमती न फिरती तो तुम्हारे जैसा सुयोग्य वर कहां से मिलता ?

राम—नहीं देवी ! हमारा तो विवाह हो चुका है।

स्वरूपनखा—अजी जरा इधर तो देखो ! ये काली-काली अलकें ! ये सुन्दर-सुन्दर कपोल ! यह मस्तानी चाल ! ये मीठे-मीठे बोल।

गाना (तर्ज दो गाना)

भोले भाले बलम तेरी बलिहारी।
तेरी सूरत पे तन-मन निसारा करूं;
तेरी मन के शिवाले में पूजा करूं;
तेरे जोबन पे प्यारे मैं मन हारी—भोले भाले···

शेर— रूठो न अबकि आये हैं दिन यार प्यार के।
सय्यां गले लगाइये बाहें पसार के।
मेरे मन में हिलोरें उठें प्यार की;
मेरी आंखों में सूरत फिरे यार की;
बात तकरार की—तुमने हर बार की
देखो जोबन की बगिया की गुलकारी-भोले भाले—

राम—देवी ! धर्म पथ से न भटको ! विषयों का आनन्द नाशवान होता है।

स्वरूपनखा—तो क्या इस कुरूपा की चाल में आकर मेरी जैसी सुन्दरी को छोड़ दोगे ?

राम—देवी! मै विवश हूं। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता।

स्वरूपनखा—तो जाने दो ! तुम्हारे छोटे भाई क्या कम सुन्दर हैं ? (लक्ष्मण के पास आकर) छोटे राजकिशोर ! उन से तो मैं केवल छेड़ करती थी; वास्तव में मेरे योग्य तो तुम ही हो अच्छा मुझे स्वीकार करो।

लक्ष्मण—हे सुन्दरी, मैं तो उनका सेवक हूं। तुम्हें सेवक के पास क्या सुख मिल सकता है ? जाओ अपना रास्ता देखो !

स्वरूपनखा—ओहो ! ऐसे निठुर हो गये। देखो ! ये कटीले नैन, यह लचीली कमर, यह सुकुमार शरीर—क्या ऐसी सुन्दरी को देखकर भी तुम्हारा मन नहीं लुभाता ?

गाना

तडपा चुके हो अब तो बहुत प्यार कीजिये !
इकार कीजिये नहीं इकार कीजिये ।।
यौवन की क्या बहार है क्या रूप का निखार।
तिरछी नजर इधर को तो इक बार कीजिये ।।
आंखों में आँख डाल के दिल से मिलाओ दिल।
हसरत जवां है यार न बेकार कीजिये ।।
तेरे सिवा न कोई नजर में समा सका।
इन्कार करके अब न हमें खुवार कीजिये ।।

लक्ष्मण—देवी ! सेवक बन कर सुख पाने की आशा ऐसी है जैसे भिखारी बन कर मान की, लोभी होकर सम्मान की। मेरे पास तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं तो उनकी आज्ञा का पुजारी हूं।

स्वरूपनखा—(फिर राम के पास जाकर) प्यारे ! वह तो मेरी बात सुनता ही नहीं। तुम ही मान जाओ ! अपना दुलाहन का मन न दुखाओ। (मटकना)

देवी ! तुम देख रही हो कि हमारी धर्मपत्नी हमारे साथ है फिर हम यह अनुचित विवाह कैसे कर सकते हैं ?

स्वरूपनखा—क्यों नहीं कर सकते ! राजाओं के यहां तो अनेक रानियां हुआ करती हैं।

राम—हां होती हैं ! किन्तु वे वेद विरुद्ध कार्य करते हैं। हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते।

स्वरूपनखा—तो क्या तुम नहीं जानते कि तुम मेरे भाई के राज्य में बैठे हुए हो ? क्या तुमने आज तक रावण और खरदूषण का नाम नहीं सुना है। याद रखो ! यदि अब भी इकार करोगे तो बिन आई मौत मरोगे।

राम—देवी ! हमें क्षमा करो ! जाओ कहीं दूसरा वर ढूंढ़ो।

स्वरूपनखा—(लक्ष्मण के पास जाकर) लो एक बार फिर तुम से भी पूछ लेती हूं। कहो मुझ से विवाह करना स्वीकार है ?

लक्ष्मण—सुन्दरी ! तेरे साथ तो वही विवाह कर सकता है जो अपनी लाज को तिनके समान तोड़ दे, संसार में सम्मान पाने की आशा छोड़ दे।

गाना

चल दूर हो पापिन नीच महा ! तू धर्म निभाना क्या जाने ?
जिस को कुल का कुल मान नहीं, वह मान बचाना क्या जाने ॥
निर्जन बन में शृङ्गार किये, फिरती है जगाती प्यार नये।
जो प्रीत की रीत नहीं समझे, वह प्रीत लगाना क्या जाने ?
जो देख पराये पुरुषों को, फैलाये वासना के फन्दे।
वह काम की चेरी बन बैठी, वह लाज बचाना क्या जाने ?
रावण ने किया स्वाधीन तुझे, अब समझाना रसहीन तुझे।
जब मार्ग ही सच्चा छूट गया, फिर राह पै आना क्या जाने ॥

स्वरूपनखा—(स्वयं) ओहो ! अब समझी ! जब तक यह विघ्नकारिणी रहेगी, जब तक मेरा काम नहीं बनेगा। इस लिये पहले इसे ही ठिकाने लगाऊं और फिर इसको रिझाऊं।

[सीता की ओर दौड़ना]

राम—(रोककर) ठहरो देवी ! जाओ अब की बार लक्ष्मण तुम्हारी अवश्य सुनेंगे ।

[लक्ष्मण को संकेत करना]

स्वरूपनखा—(लक्ष्मण के पास) क्यों जी ! अब आए कुछ सीधे मार्ग पर या नहीं ?

लक्ष्मण—हां आओ ! तुमने ठाकुर जी पर कठोर शब्दों के पुष्प चढ़ाये हैं, उनका प्रसाद भी लेता जाओ ।

[स्वरूपनखा का पास जाना और लक्ष्मण का उसकी नाक काटना]

स्वरूपनखा—(चिल्लाती हुई) हाय ! मैं मर गई, मेरी नाक कट गई ! हाय-हाय अन्यायी ने मुझे नकटी बना दिया ।

[स्वरूपनखा का जाना परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(खर-दूषण की मदिराशाला)

खर—अरे ! क्या आज बोतलें खाली पड़ी हैं जो दौर बिल्कुल बन्द हो रहा है ?

दूषण—क्या मदिरा का दिवाला निकल गया या साकी पड़ा सो रहा है ?

साकी—लीजिये अन्नदाता ! शराब हाजिर है ।

खर—हां-हां लाओ ! जल्दी लाओ :—

बना दे साकिया सबको पिला कर आज दीवाना ।
मजा है तब ही पीने का रहे चलता ही पैमाना ।।

दूषण—ठीक बिल्कुल ठीक :—

मजा है जिन्दगी का तब रहें हम और तुम साकी ।
बना दे बोतलें खाली उलट दे खुम के खुम साकी ।।

पहला राक्षस—अगर खुम के खुम तुम ही पी जाओगे तो हमें क्या खाक पिलाओगे ? :—

न इन से बात कर साकी बना है क्या तू दीवाना।
मेरे पहलू में रख दे आज मैखाने का मैखाना॥

दूसरा—अरे! ऐसी क्यों ठानता है? क्या सारा हिस्सा अपना ही जानता है?

चिपटता किस लिये नादान तू बोतल से सागर से।
रियायत हो नहीं सकती मिलेगी सब को नम्बर से॥

खर—कुछ परवाह नहीं! जिसको जितनी मिले उतनी ही पी जाओ! लाल परो, वाह, क्या नाम है लाल परी!

इस नाम में ही वाह! क्या तासीर भरी है।
पागल बना के छोड़े यह वह लाल परी है॥

दूषण—क्यों न हो! जिन्दगी का मजा तो इसी के साथ है:—

मर जाऊं ऐ शराब! अगर तेरी बू न हो।
खाना भी है हराम जो बोतल में तू न हो॥

स्वरूपनखा—(आकर) चूल्हे में जाएं तुम्हारी बोतलें और भाड़ में पड़े पीना-पिलाना। अरे मूर्खो! तुम्हारी बहिन का यह हाल हो और तुम्हें मदिरा पीने का ख्याल हो—धिक्कार है, तुम्हारे आनन्द पर धिक्कार है।

खर—क्यों बहिन! क्या बात है?

पहला—सुनाओ तो मौसी क्या सूचना लाई हो?

दूसरा—बताओ तो बुआ! क्यों इतनी घबराई हो?

तीसरा—अरी ताई! तुम्हारा बोल तो कुछ भारी लगता है।

चौथा—क्यों चची! क्या बोलने में कुछ जोर पड़ता है।

पांचवां—अरी नानी! बताओ-बताओ! जर दिल की घुन्डी खोल-कर तो दिखाओ।

स्वरूपनखा—हाय! तुम्हारा सत्यनाश! क्या यह मजाक करने का समय है?

दूषण—तो कहती क्यों नहीं क्या बात है?

स्वरूपनखा— गाना (लावनी)

क्या पूछो मेरी बात अरे नादानो ।
सूरत स मेरी हाल मेरा पहचानो ।।
जिसके ऐसे बलवान लड़ाका भाई ।
दुष्टों ने उसकी ऐसी दशा बनाई ।।
बजता है जग में नाम का जिसके डंका ।
बदनाम हुई है आज तुम्हारी लंका ।।
तुम यहा यह झूठो शान जमा बैठे हो ।
क्या पता नही कुलमान गवा बैठे हो ।।
आती हो अगर कुछ शर्म मान-हानि में!
जाकर डूबो चुल्लू भर ही पानी में ।।

खर—हैं क्या कहा ! लका की बदनामी ! हमारे कुल-मान की हानि ! वह किस प्रकार ? जरा खालकर तो सुनाओ !

स्वरूपनखा— गाना (लावनी)

बैठे बैठ दिल आज़ लगा उकताने ।
मै चली गई दण्डक-वन-मन बहलाने ।।
कुछ दिनों मे आकर भाई पंचवटी पर ।
ठहरे हैं दो सुकुमार मनोहर सुन्दर ।।
इक रूपवान गुणवान साथ है नारी ।
कहते हैं राम की प्रिया सिया सुकुमारी ।।
जब देखा मेरा रूप चन्द्र उजियाला ।
वह छोटा राजकुमार हुआ मतवाला ।।
उसकी चालो म मैं कैसे आ जाती ?
क्या खर-दूषण के कुल को दाग लगाती ?
जब चली न कोई चाल कपट की बांधी ।
तब अन्याई ने मेरी नाक उड़ा दी ।।

खर—ओहो, इतना अनर्थ ! मेरे ही साम्राज्य की सीमा में और मुझ पर ही अन्याय !

दूषण—आखिर वे पंचवटी पर किस तरह चले आये ?

खर—नीच ! पापी ! मृत्यु के ग्रास ! (स्वरूपनखा से) अच्छा स्वरूपनखा ! तुम निश्चिन्त रहो ! तुम्हारी नाक का बदला उनके खून से लिया जायगा ।

स्वरूपनखा—हां भाई ! तब ही मुझे सन्तोष आयेगा ।

दूषण—अच्छा सेनापति ! तुरन्त सेना को तैयार करो और पंचवटी की ओर कूच बोल दो ।

सेनापति—जैसी आज्ञा महाराज !

[सेनापति का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(पंचवटी पर राम लक्ष्मण की बातें)

लक्ष्मण—हे तात ? पृथ्वी पर पाप का कितना प्रसार हो गया कि स्त्रियों को भी धर्म-अधर्म का ज्ञान नहीं रहा ।

राम—भूल क्यों रहे हो लक्ष्मण ! इस राक्षसा दुराचार के कारण ही तो अवतार लेना पड़ा है ।

लक्ष्मण—तो एक राक्षसी को साधारण सा दण्ड मिल जाने पर ही पाप का नाश कैसे हो जायगा ?

राम—यह साधारण घटना नहीं है लक्ष्मण ! वह महा प्रतापी किन्तु अभिमानी रावण की बहिन है । उसकी नाट काटने का बड़ा भयंकर परिणाम निकलेगा ।

लक्ष्मण—तो क्या उसको नाक काटना अनुचित था महाराज !

राम—नही नितान्त उचित ! कारण के बिना कार्य नहीं हुआ करता लक्ष्मण ! देखना, स्वरूपनखा की नाक कैसे रंग लायगी और किस प्रकार पापियों के नाश का कारण बन जायेगी ?

लक्ष्मण—किस प्रकार बन जायेगी प्रभो ?

राम—क्या इतना भी नहीं समझे ? देखो, वह दुष्टा अपने सहायकों

को लायेगी और कुछ ही समय में भयंकर युद्ध होगा जिससे पृथ्वी राक्षस विहीन हो जायगी।

लक्ष्मण—सत्य कहत है महाराज ! किन्तु यदि रावण ने इस घटना की ओर ध्यान नहीं दिया तो ?

राम—यह असम्भव है ! तामसी बुद्धि शाघ्र ही क्रोध में आ जाती है, और स्वय अपने नाश का कारण बन जाती है।

लक्ष्मण—(सामने देखकर) आप की बात कितनी सत्य है। वह देखिए भगवन ! सामने आकाश में धूल छा रही है। प्रतीत होता है कि वह दुष्टा अपने किसी सहायक को ला रही है !

राम—आने दो ! बहुत समय से भुजायें शिथिल पड़ी हुई हैं। आज बाणों की पराक्षा का समय आया रहा है। वीर का तो यह प्रसाद है लक्ष्मण !

लक्ष्मण—यथार्थ है महाराज ! किन्तु क्या लड़ने को मुझे आज्ञा नहीं मिलेगी।

राम—नहीं ! तुम जानकी को लेकर अलग चले जाओ। राक्षसों के सामने सती स्त्री का आना ठीक नहीं।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा प्रभो !

[जानकी-लक्ष्मण का जाना, खर दूषण का प्रवेश]

खर—राम ! तू अभी बच्चा है; लड़ना क्या जाने। जा अपनी छिपाई हुई स्त्री को ला दे और अपने घर लौट जा।

दूषण—ठीक बिल्कुल ठीक ! इस से सहज उपाय और क्या हो सकता है ?

राम—विधर्मियों ! ऐसी बातें कहते हुए तुम्हें लाज नहीं आती ? क्या तुम किसी माता के पुत्र नहीं हो ? क्या तुम सतियों का मान भी नहीं जानते ?

दूषण—देखने में ही बालक है किन्तु बोलने में बड़ा बोलचाल मालूम होता है ? देखो तो कैसा सुन्दर उपदेश सुना रहा है।

खर—समझ रहा है कि स्वरूपनखा की नाक काट कर जीवित चला

जाऊंगा। यह नहीं जानता कि मेरा नाम खर है; मैं जीते को ही चबा जाऊंगा।

राम—मूर्ख! हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय रूपी सिंह तुम जैसे मृगों को ढूढकर मारता है।

खर—अरे! जा चला जा, नहीं तो फूंक से उड़ा दूंगा, हाथों में मलकर सुरमा बना दूंगा।

भुंगे की तरह पीस के पल भर में मिटा दूं।
चाहूं तो कुचल दूं अभी मिट्टी में मिला दूं॥

राम—तो फिर सोच विचार किस बात का है? यदि ऐसा ही वीर है तो दो हाथ दिखा, नहीं तो नकटी की गोद में छिप जा!

संग्राम में तो वीर मचलते नहीं देखे।
बातों के तीर युद्ध में चलते नहीं देखे॥

खर—अरे नादान? मैं तो बच्चा समझ कर तलवार नहीं चलाता था, नहीं तो दांतों में चबा जाता।

न चलती इस तरह फर-फर कभी मूरख जबां तेरी।
बना देता तेरे पूरजे उड़ाता धज्जियां तेरी॥

राम—अरे निर्लज्ज?

डरपोक को हथियार सजाना नहीं आता।
वीरों को कभी बात बनाना नहीं आता॥

खर—अच्छा तो अब आगे बढ़ और मेरा वार रोक?

[युद्ध होना-खर का मारा जाना]

दूषण—सम्भल-सम्भल? खर को मार कर आपे से न निकल?

राम—आ? तू भी उसके साथ चल?

[युद्ध होना, दूषण का मारा जाना, फिर सेना का आना और उसका भी मरना]

सीता जी—(आकर)

दोहा

धन्य धन्य ! रघुकुल-ध्वजा, धन्य-धन्य रघुबीर।
धन्य दनुज-दानव-दलन, धन्य महा रणधीर॥

लक्ष्मण—

दोहा

जय रविकुल-भूषण-तिलक, विपद विदारणहार।
धरणी-भार-हरण-निमित, धरो राम अवतार॥

[आकाश से फूल बरसाना परदा गिरना]

आरती

आठवां अंक

दृश्य पहला

(रावण का दरबार)

रावण—रावण; लंका का महाराजा रावण ! देवताओं का अन्न-दाता, लोकपालों का इष्टदेव ! दानव, दनुज और दैत्यों का स्वामी; यक्ष, गन्धर्व और दिक्पालों का करतार ! काल अब वह काल नहीं; मेरे पैरों का गुबार है। इन्द्र, अब वह इन्द्र नहीं; मेरी ठोकर का ठुकराया हुआ आज्ञाकार है। बेमाता को मेरी आज्ञा के बिना सांसारिक कामों को छेड़ने का अधिकार नहीं; मेघ को मेरी इच्छा के विरुद्ध पानी बरसाने का अधिकार नहीं। पवन मेरे महलों में झाड़ू लगाता है; सूर्य प्रकाश और चन्द्रमा ठण्डक पहुंचाता है। छिड़काव करना वरुण का काम है; पांव दबाना यम और इन्द्र का कर्त्तव्य है—

पड़े दिन काटते हैं यम, वरुण मेरे सहारे पर।
कुबेर और अश्वनी पलते हैं मेरे ही गुजारे पर॥
खड़ा रहता है विष्णु हाथ बांधे मेरे द्वारे पर।
निरन्तर नाचना है काल भी मेरे इशारे पर॥
अगर गुस्सा घडी भर को मेरी आंखों में छा जाये।
मही डोले, हिलें पर्वत, सकल संसार थर्राये॥

मन्त्री—निस्सन्देह ! श्रीमान के सामने कोई अभिमानी सिर नहीं उठा सकता; बड़े से बड़ा योद्धा भी लंका के वीरों से आँख नहीं मिला सकता :—

नहीं विद्रोह की शक्ति रही अब देवताओं में।
दुहाई मच गई लंका की चारों ही दिशाओं में ॥
दनुज,गन्धर्व,दानव, देव सब ने सिर झुकाया है।
हर इक जड़ पर,हर इक चैतन्य पर आतंक छाया है॥

मेघनाथ—क्यों न हो ? महाराज के नाम में पर्वतों को हिला देने की शक्ति है; श्रीमान् के क्रोध में शत्रुओं को जलाने वाली ज्वाला दहकती है :—

भूल कर भी जब उठाया है किसी शत्रु ने सिर।
गिर गई मानों वहीं बिजली कड़कती सीस पर ॥

रावण—मन्त्री जी ! अब अप्सराओं को बुलाओ, नाच-गाने का रंग जमाओ और शराब का दौर भी चलवाओ !

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज ! द्वारपाल !

द्वारपाल—आज्ञा श्रीमान् !

मन्त्री—जाओ, नाचने गाने वाली पात्रों को बुलाकर लाओ और मदिराघोश को महाराज की आज्ञा सुनाओ !

द्वारपाल—जैसी आज्ञा श्रीमान् !

[अप्सराओं का आना और नाचना]

गाना

तेरी नजर ने दिल को दुनियां लूट लीं, लूट ली-लूट ली।
टेढ़ो चितवन गेसू काले-नैन रसीले मद मतवाले;
ओ मस्तानी चालों वाले ! मेरी तमन्ना लूट ली, लूट ली लूट ली।
तेरी नजर ने·····

शेर—मस्ती का साज छेड़ के मस्ताना कर दिया।
हमदम था एक दिल मगर बेगाना कर दिया॥
चलती हैं गम की तलवारें, सून निर्मोही दिल की पुकारें,
चैन की दौलत दिल की बहारेंओ मह-पारा लूट ली,लूट ली-लूटली
तेरी नजर ने·····

रावण—साकी ! जल्दी लाओ :—

लादे ऐसी कि जो मस्ताना बना कर छोड़े।
होश अपना न रहे रंग जमा कर छोड़े ।।
पीने वाला है वही और है झगड़ा झूठा।
मुंह से अपने न जो मैखाना लगा कर छोड़े ।।

साकी—लीजिये अन्नदाता :—

बोतल का काक उड़ते ही मस्ती है जागती।
यह लाल परी आंख के परदे में नाचती ।।

मन्त्री—मदिराधीश :—

जाम पर जाम का वह दौर चला दे साकी।
सारे दरबार को दीवाना बना दे साकी ।।

साकी—जैसी आज्ञा महाराज :—

पीकर शराब आदमी मस्ती में चूर है।
होठों से जब लगाई तो गम दिल से दूर है ।।

मेघनाथ—अरे ला! साकी जल्दी ला! आज तो जी भर कर पिला—

आबेहयात क्या पिये पैमाना छोड़कर।
जन्नत में कौन जाए यह मैखाना छोड़कर ।।

सभासद—अरे नादान ! इधर भी तो ला—

न कर अब देर ओ साकी ! पिला दे जो भी बाकी है।
पड़ा है कैसे झंझट में, मुझे तलछट ही काफी है ।।

दूसरा—देर अब अच्छी नहीं जल्द पिला दे साकी।
ला अगर जाम नहीं, मटका उठा दे साकी।

तीसरा—बस न कर साकी तू बस एक ही प्याला देकर।
मेरे मुंह में तो उलट डाल दे मटका लेकर ।।

[स्वरूपनखा का प्रवेश]

स्वरूपनखा—हाय ! मैं लुट गई ! मेरी नाक कट गई ! हाय हाय !

रावण—अरे यह कौन है जो इस प्रकार चिल्ला रहा है ! सारा आकाश सिर पर उठा रहा है ?

स्वरूपनखा—दुहाई है ! अरे भाई तेरी दुहाई है ।

रावण—(देखकर) कौन ? स्वरूपनखा! बता क्या फरियाद लाई है?

स्वरूपनखा—भाई तू तो मदिरा पीकर सोता रहता है और तेरे राज्य में अनर्थ होता रहता है ।

रावण—अनर्थ ! मेरे राज्य में ! यह तू कैसे कह रही है ? कहीं पागल तो नहीं हो गई :—

किस में साहस है करे जो सामने टेढ़ी नजर ।
किस की शक्ति है उठा कर आंख भी देखे इधर ।।
सिर उठाने की हिमाकत जिसने भी इक बार की।
सिर नजर आयेगा उसका नोक पर तलवार की।।

स्वरूपनखा—तो क्या तुझे अभी तक भी पता नहीं कि शत्रु सिर पर आन पहुंचा है ?

रावण—शत्रु ! कौन शत्रु ! किस का शत्रु ? मेरा शत्रु बन कर ब्रह्मांड में जीवित रहने वाला कौन है ? :—

नहीं है काल की शक्ति करे जो बाल भी बीका ।
पड़ा है सामने मेरे जगत का आज बल फीका ।।
मेरे शत्रु को दुनिया में ठिकाना मिल नहीं सकता ।
लगाकर वंर जीने का बहाना मिल नहीं सकता ।।

स्वरूपनखा—मैं तो तभी समझूंगी जब शत्रु से मेरा बदला लेकर दिखाओगे ।

रावण—तो क्या तुम मेरी शक्ति को नहीं जानती ? क्या तुम ने पृथ्वी, आकाश और रसातल में मेरे नाम की दुहाई नहीं सुनी ? मैं वह हूं कि—

चाहूं तो सितारों की जगह फूल खिला दूं ।
चाहूं तो रविदेव को पूरब में छिपा दूं ।।
विन्ध्य और हिमालय की जड़ों तक को हिलादूं।
आकाश को चाहूं तो रसताल से मिला दूं ।।

भय से मेरे न शेष के मस्तक में बल रहे।
वायु में चाल और न मेघों में जल रहे॥

स्वरूपनखा—यह तो मैं जानती हूं भाई, परन्तु समय की गति को कौन रोक सकता है? प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है? यह देखो मेरी नाक!

रावण—तो स्पष्ट क्यों नहीं कहती? बात को छिपाने का प्रयत्न क्यों कर रही है? तेरी नाक किस ने काटी है?

स्वरूपनखा—क्या कहूं भाई! कुछ समय से अयोध्या के दो राजकुमार आये हैं पंचवटी पर और अपने साथ एक परम सुन्दरी स्त्री भी लाये हैं। आज मैं घूमती-फिरती उधर जा निकली तो छोटे भाई लक्ष्मण ने कामातुर होकर मेरे ऊपर कुदृष्टि डाली और जब मैंने भागना चाहा तो क्रोधित होकर मेरी नाक काट डाली।

रावण—तो तुम ने खर दूषण से क्या नहीं कहा?

स्वरूपनखा—कहा था! परन्तु उन अन्याईयों ने खर-दूषण को भी गहरी निद्रा में सुला दिया। मेरी नाक के साथ उनका सिर भी उड़ा दिया।

रावण—(चिन्ता में पड़कर) उनका सिर भी उड़ा दिया? बड़े आश्चर्य की बात है! क्या तुम सच कह रही हो?

स्वरूपनखा—हां बिल्कुल सच कह रही हूं!

रावण—(गम्भीर मुद्रा में) तो अवश्य कोई रहस्य है। खर-दूषण को मार देना कोई साधारण बात नहीं है। किन्तु तुम चिन्ता न करो। जाओ महलों में आराम करो! इसका उचित प्रबन्ध कर दिया जायगा और तेरी नाक काटने का बदला अवश्य लिया जाएगा।

मन्त्री—महाराज! ऐसे दुष्टों को शीघ्र दण्ड मिलना चाहिये। नहीं तो राज्य में उपद्रव मच जायगा, प्रत्येक शत्रु सिर उठायेगा!

मेघनाथ—पिता जी ! आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये और अभिमानियों का सिर अपने सामने हाजिर लीजिये !

रावण—नहीं ! करने से पहले हर बात को सोच लेना जरूरी है इसलिये तुम्हें आज्ञा देने में मजबूरी है। अच्छा, दरबार बरखास्त, सब लोग चले जाएं।

[रावण के अतिरिक्त सब का जाना]

रावण—(स्वयं) देवता, राक्षस, गधर्व और दिक्पाल—जितने ब्रह्मांड में हैं, उनमें ने कोई मेरे सेवकों को बराबरी भी नहीं कर सकता, फिर मेरे समान खर-दूषण को मारने वाला साक्षात ब्रह्म के अतिरिक्त और कोन हो सकता है ? हां, यदि यह सत्य है ! और जगत के स्वामी ने अवतार धारण कर लिया है, तो मैं उन से अवश्य बैर करूंगा और अपने दूसरे शाप का अन्त करूंगा। मेरा शरीर तामसी है; इससे भजन और सयम तो होता नहीं, फिर उद्धार का और साधन ही क्या है ? ठीक है ! (सोचकर) परन्तु इसका उपाय ! आखिर बैर-भाव भी कैसे बढ़ाया जाय ? (फिर सोचकर) हां, यही ठीक है। कोई कपट का वेष बनाकर जाऊं और जानकी को उठाकर लाऊं। यदि वे साधारण मनुष्य हैं तो मेरे भय से लौट जाएंगे, और यदि वास्तव में अवतार हैं तो शक्तिरूपी जानकी को खोजते-खोजते यहां तक आयेंगे और मुझे इस शरीर रूपी बन्धन से छुड़ायेंगे। परन्तु अकेले से यह काम बनना बहुत कठिन है; इसमें किसी दूसरे की सहायता की भी आवश्यकता है। कौन हो सकता है, जो मेरे लिये अपनी जान पर खेल जाये और इस महान कार्य में मेरा हाथ बटाये। (कुछ सोच कर) ठीक ! याद आया ! मारीच, निस्सदेह हर एक दाव-घात में होशियार भी है और मेरा आज्ञाकार भी है। बस, उसी को तैयार करता हूं और जैसे भी हो सके जानकी को हरता हूं।:—

कसौटी पर उमीदों की मुक़द्दर आजमाता हूं।
कपट से,द्रोह से,छल से उसे जाकर उड़ाता हूं ॥

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(मारीच की कुटी)

मारीच— गाना

परलोक का मूरख ध्यान तो कर क्यों दुनिया में भरमाया है।
जिस पर तू मोहित हो बैठा वह सारी झूठी माया है ॥
भाई-बन्धु, बेटा-बेटी, नारी—भौजाई, मात-पिता।
ये सुख के सारे साथी हैं तूने जिनको अपनाया है ॥
संसार-जाल में फंस मूरख अपनी सुध-बुध सब भूल गया।
अज्ञान बना ही बैठा है सब ज्ञान-ध्यान बिसराया है ॥
इक दिन जाना होगा तुझ को संसार का सुख सब छोड़ कुशल।
इक रैन बसेरा तेरा है तू क्यों इस पर ललचाया है?

[रावण का प्रवेश]

रावण—क्यों मारीच! क्या हाल है?

मारीच—(प्रणाम करके) लंकेश प्रणाम! आइये! पधारिये! आज तो महाराज ने बड़ी कृपा दिखलाई जो इतने दिनों पीछे सेवक की याद आई।

रावण—हां, आज तुम से मिलने को इतना जी चाहा कि दरबार से सीधा इसी ओर चला आया।

मारीच—अहो भाग्य! कहिये महाराज! आनन्द में तो हैं?

रावण—हाँ! :—

'हम भी हैं आनन्द'—कहते हैं सभी व्यवहार में।
कौन रहता है मगर आनन्द इस ससार में ॥

मारीच—क्यों? क्या आजकल कोई चिन्ता सता रही है जो ऐसी निराशा भरी बात कही जा रही है?

रावण—हां भाई ! इस समय मुझ पर भी एक आपत्ति है।

मारीच—आपत्ति ? देवता और दानव के स्वामी पर आपत्ति ! स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के विजेता पर आपत्ति ! क्यां कहते हो दानवेश !

रावण—ठीक कहता हूं भाई ! कभी-कभी मगल के सूर्य पर भी अमगल की घटाएं छा जाती हैं। आपत्ति का नाम न जानने वालों पर भी आपत्तियां आ जाती हैं।

मारीच—तो कहिये क्या समाचार है ? यदि कोई मेरे योग्य सेवा हो, तो मारीच इसी समय तैयार है।

रावण—क्यों नहीं ! तुम जैसे वीरों पर ही तो मुझे गर्व है।

मारीच—तो फिर बतलाइये मेरे लिये क्या सेवा है ?

रावण—भाई ! कुछ दिनों से अयोध्या के दो राजकुमार इस ओर आये हैं और उन्होंने पंचवटी पर डेरे लगाये हैं। एक दिन बहिन स्वरूपनखा घूमती-घूमती उधर निकल गई, तो उसके रूप को देखकर उन दोनों की तबियत मचल गई। उन्होंने बहुत जाल फैलाये; अनेक दाव-घात चलाये, किन्तु जब स्वरूपनखा पर कोई प्रभाव न हुआ, तो नीचता करने पर उतर आये। छोटे भाई लक्ष्मण ने कटार निकाली और स्वरूपनखा की नाक काट डाली जब स्वरूपनखा ने अपनी सहायता के लिये खर-दूषण को बुलाया तो उन दुष्टों ने उन को भी यम के द्वार पहुंचाया।

मारीच—(सोच में पड़कर) हूं ! तो फिर अब आप क्या चाहते हैं ?

रावण—यही कि यदि किसी प्रकार जानकी हाथ आ जाय, तो इस अपमान का बदला उतर जाय।

मारीच—परन्तु जानकी हाथ कैसे आये ?

रावण—हां, इसका भी है एक उपाय। तुम वेष बदलने में होशियार हो और दाव-घात के भी जानकार हो, इसलिये सुनहरी मृग

का रूप धारण करो और मेरे साथ चलो। यदि हमारी चाल चल जायगी तो जानकी अवश्य हमारे हाथ आ आएगी।

मारीच—किन्तु ऐसा विचार करना तो बुद्धि के प्रतिकूल है, क्योंकि राम से बैर बांधना बड़ी भयंकर भूल है। :—

जिन्होंने बाण मारा ताड़का का दम निकाला है।
जिन्होने चाप शम्भू का सहज में तोड़ डाला है॥
जिन्होने भाई खर-दूषण को क्षण में पीस डाला है।
जिन्होने मुझको कुण्ठित वाण से लंका में डाला है॥
उन्हों को आप ने बलहीन और नादान समझा है।
बहुत धोखा हुआ भगवान को इन्सान समझा है॥

रावण—बस, डर गए? रावण जैसे पराक्रमी के सम्बन्धी होकर भी उन तपस्वियों से डर गए? नहीं-नहीं ऐसा न कहो :—

मैं समझता हूं कि तुम बलवान हो रणधीर हो।
वीर की सन्तान हो और एक सच्चे वीर हो॥

मारीच—क्या बताऊं लंकेश! जब विश्वामित्र की यज्ञ वाला बाण याद आता है तो हृदय बुरी तरह कांप जाता है :—

उठाऊं किस तरह आगे को पग उठता नहीं मेरा।
अधम साहस है मन हिम्मत जरा करता नहीं मेरा॥

रावण—तो क्या कायरता की बात करके वीरता के नाम को बट्टा लगाना चाहते हो? लंका को अपमानित और कलंकित बनाना चाहते हो?

कांपता है जिससे जग भयभीत सारा लोक है।
क्या उसी रावण का मामा इस कदर डरपोक है॥

मारीच—नहीं! डरपोक नहीं बल्कि आप का हितषी। विश्वास कीजिये दानवेश! जिसने आपको यह सम्मति दी है वह आप का मित्र नहीं शत्रु है :—

लाके धोखे में मिटाया जा रहा है आप को।
नाश के पथ पर चलाया जा रहा है आपको॥

रावण—नाश के पथ पर ? मुझे नाश के पथ पर चलाने वाला कौन है ? विरोध की भावना लेकर मेरे सामने आने वाला कौन है?

बढ़ते हुए जमाने की रफ्तार रोक दूं ।
विकराल-काल-ज्वाला की फुंकार रोक दूं ।।
आगे न बढ़ाने पाए नदी, धार रोक दूं ।
घनघोर घोर मेघ की बौछार रोक दूं ।।
आकाश को उजाड़ दूं तारों को तोड़ दूं ।
अग्नि का तेज छीन लूं, सागर निचोड़ दूं ।।

मारीच—ठीक है ! किन्तु समय की गति सब कुछ निष्फल बना देती है । होनी अच्छे अच्छों को खेल, खिला देती है :—

काल का परवाह बढ़ता और फिर रुकता भी है ।
जो चढ़ा करता है ऊंचा वह ही फिर झुकता भी है ।।

रावण—बस-बस रहने दे ! अपनी इस शिक्षा को रहने दे । मैं इस प्रकार की बातें सुनना नहीं चाहता :—

आज उन दो जन्तुओं का बल दिखाने लग गया ।
शेर को डरपोक गीदड़ से डराने लग गया ।।
कोयले पर और भी रङ्गत चढ़ाने लग गया ।
जोंक पत्थर में अरे कायर लगाने लग गया ।।
मेरा नौकर और बड़ाई फिर उसी मुर्दार की ।
मार डालूंगा अगर फिर से यही तकरार की ।।

मारीच—क्षमा कीजिए लंकेश! मैं आपको अपना मित्र जानकर समझाता हूं, अच्छे और बुरे का ज्ञान कराता हूं ।

रावण—तो क्या मैं अज्ञान हूं, जो तू ज्ञान का उपदेश सुनाता है ! बच्चा हूं जो मुझे गुरु की तरह पाठ पढ़ाता है ? :—

सच कहा है नीच को सिर पर चढ़ाना है बुरा ।
तेरे जैसे मूर्खों को मुंह लगाना है बुरा ।

मारीच—मैं मूर्ख ही सही ! किन्तु ये बातें आपको मूर्खों वाली नहीं कह रहा हूं । याद रखिए :—

नहीं अच्छा मिलेगा फल तुम्हें अपनी ढिठाई का।
चले हो राह खोटी छोड़कर रस्ता भलाई का॥
हुए अज्ञान के वश और बने भगवान के शत्रु।
कहाकर वेद पण्डित बन गये कुल-मान के शत्रु॥

रावण—कायर, कुबुद्धि, नादान! गिरह भर का आदमी और गज भर की जबान। क्या जीवन से घृणा हो आई है? जो रावण को उपदेश करने की समाई है। क्या तू नहीं जानता?—

जो इरादा कर चुका हूं वह बदल सकता नहीं।
बल यह रस्सी का है जलकर भी निकल सकता नहीं।
उठ खड़ा हो साथ चल, बकवास सब बेकार है॥
सिर उड़ा दूंगा अगर फिर से कहा 'इन्कार है'॥

मारीच—इन्कार तो नहीं, परन्तु पराई स्त्री को चुराना कहां का धर्म है? यह तो महा नीच कर्म है।

रावण—और पराई स्त्री की नाक काटना परम धर्म है?

मारीच—महाराज! होनी से हर कोई मजबूर है। भगवान ही जानता है कि इस में राम का दोष है या स्वरूपनखा का कसूर है।

रावण—तो यह क्यों नहीं कहता कि स्वरूपनखा बदचलन है स्वरूपनखा व्यभिचारिणी है! अरे दुर्बुद्धि, मलीनात्मा, नीच बुद्धू! तुझे तो बात भी करनी नहीं आती! जो मुंह में आता है वही बक देता है, देहाती!

मिटा देता अभी होता न गर तुझ से मेरा नाता।
जबां को काट देता और मुंह में आग भरवाता॥

मारीच—परन्तु सच्ची बात तो·····

रावण—(बात काट कर) चुप नालायक! इतना नहीं जानता कि राजाओं के सामने सभ्यता में रहा करते हैं; सच्ची बात भी [illegible]

वही बकवास करता है जबां फर-फर चलाता है।
समझकर बोलना आता नहीं बातें बनाता है॥

मारीच—बस, एक बार फिर कहे देता हूं लंकेश ! यह अहकार तुम्हें पतन की ओर ले जायगा; राम से बैर करने का परिणाम अच्छा नहीं हो पायगा :—

कूद कर अग्नि में बचने का बहाना ही नहीं।
राम के बैरी को दुनियां में ठिकाना ही नहीं॥

रावण—फिर वही झक-झक ! फिर वही बकवास ! न अपनी पदवी का ध्यान न मेरी इज्जत का पास। अरे मूर्ख ! यह पाठशाला नहीं है जो तू बच्चों की तरह मुझे पढ़ा रहा है। मैं साथ चलने को कहता हूं और तू दूर खड़ा बात बना रहा है। याद रख यदि फिर इन्कार करेगा तो बिन आई मौत मरेगा। परों से कुचल कर धूल में मिला दूंगा; तेरी लाश चील और कौवों को खिला दूंगा :—

तोड़ दूंगा सख्तियों को मूख ! तेरी जान पर;
चूर कर दूंगा पटक कर लाश को पाषाण पर।

मारीच—अच्छा केवल ! एक बार फिर विचार लीजिए, तब .....।

रावण—(बात काट कर) सोच चुका हूं, अच्छी तरह सोच चुका हूं। चल, मेरे साथ चल :—

कह चुका हूं तुझ से मूर्ख ! बात मेरी मान ले।
काल मण्डलाता है वरना सिर पै तेरे जान ले॥

मारीच—महाराज ! ...

रावण—बस आगे शब्द न निकालना।

मारीच—अच्छा केवल एक बात और सुन लीजिए।

रावण—नहीं ! कोई जरूरत नहीं।

मारीच—मुझे क्षमा कीजिए।

रावण—कदापि नहीं।

मारीच—तो क्या चलना ही पड़ेगा ?

रावण—अवश्य ।

मारीच—और यदि इन्कार करूं ?

रावण—तो यही तलवार तेरे सीने के पार करू ।

मारीच—(एक ओर होकर स्वय) आह ! अब दोनों ओर से मौत आई है । यदि गया ता राम—बाण नहीं छोड़गा और इन्कार किया तो इसकी तलवार से सफाई है । क्या करूँ ? क्या न करूं ? ऐसी दुविधा में पड़ा हूं कि दोनों ओर खाई है (विचार कर) खैर मौत तो आ ही गई फिर इस दुष्ट के हाथ से क्यां मरूं ? भगवान का वाण खा कर ही कल्याण का साधन क्यों ना करूं ? (प्रकट) अच्छा लंकेश ! मुझे आप की आज्ञा स्वाकार है; चलिये, मारीच चलने का तंयार है ।

रावण—शाबाश ! मारीच तू बड़ा दिलेर है; आखिर तो शेरों का शेर है ।

मारीच—(स्वयं) अहा ! :—

स्वार्थ में अन्धी है दुनिया, स्वार्थ का संसार है ।
स्वार्थ की ही मित्रता है, स्वार्थ का ही प्यार है ॥

रावण—क्यों ! अब क्या संकोच है ?

मारीच—कुछ नहीं ! चलिये :—

दिखाया है मेरे कर्मों ने जो कुछ वह ही अच्छा है ।
जब आई मौतही सिर पर तो सब संकोच वृथा है ॥

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण और सीता जी बैठे हैं]

सीत। **गाना**

दोहा—समय निकट है जाएगे अवधपुरी के धाम।
बन भरमण में हो गय चौदह बरस तमाम॥
तेरी ही कृपा से हे ईश्वर! सब दिवस कटे आसानी में।
पाये बहुतेरे सुख हमने बन-उपवन की जिन्दगानी में॥
अब लौट अवध को जाएंगे देखगे नगरी को शोभा।
दर्शन पाकर माताओं के यह जीवन-जन्म सफल होगा॥
होगी फिर भेंट भरत जो से, सखियों से मिल सुख पाऊंगो।
जो कुछ भी वन में बीता है सारा वृतान्त सुनाऊंगी॥

अहा! जिस वन में आते समय प्रजावासी दुखी होते थे वह वन कितना सुखदायी है! मानो यहां की प्रत्येक वस्तु जीवन का रस लेकर आई है। :—

बड़े स्वादिष्ट मेवे हैं बड़ा ही शुद्ध पानी है।
मनोहर स्वर्ग से बढ़कर यहां की जिन्दगानी है॥

राम—ठीक है प्रिय! मन की कल्पना सब कुछ करके दिखा देती है। इस में वह शक्ति है जो सुन्दर को असुन्दर और असुन्दर का सुन्दर बना देती है।

सीता—यही तो कारण है नाथ! कुछ लोग तो महलों में भी दुखी रहते है और कुछ टूटी फूटी झोंपड़यों को भी अपना स्वर्ग कहते हैं।

राम—और इस से भी बढ़कर जब वैराग्य की भावना जाग्रत हो जाता है तो ससार के सारे वैभव और समस्त धन-सम्पत्ति निर्मूल हो जाती है :—

विषयों से हट के मन जो उदासीन हो गया।
ससार का समस्त विभव लीन हो गया॥
झूठे ही संकटों को मनुज झेल रहे हैं।
है कल्पना के खेल जिन्हें खेल रहे हैं॥

[मृग रूपी मारीच का प्रवेश]

सीता—(मृग को देखकर) अहा! देखिये प्रभो! यह मृग वन की छटा का आनन्द किस प्रकार उठा रहा है? मानों जीवन की असारता को भूले जा रहा है।

राम—हां-हां! अपनी मस्तो में विचरता फिर रहा है।

सीता—परन्तु स्वामी! इसका रग तो बड़ा ही सुहावना है। यदि यह हाथ आ जाए तो मेरी इसे पालने की भावना है।

राम—हाँ! है तो बड़ा सुन्दर।

सीता—तो स्वामी! चले जाइये और जैसे भी हो इसे पकड़ लाइये।

राम—किन्तु यदि हाथ न आया तो?

सीता—तो फिर इसके चर्म की मृगछाला ही बना लेंगे।

राम—अच्छा, तो लो मैं अभी जाता हूं। (लक्ष्मण से) देखो लक्ष्मण! तुम सावधान रहना! जिस दिन से खर-दूषण का वध किया है राक्षसों का बहुत जोर हो गया है। मेरे पीछे यहां से एक पग भी न धरना और हर प्रकार से जानकी की रक्षा करना।

लक्ष्मण—ऐसा ही होगा प्रभो! आप निश्चिन्त रहें।

[राम का मृग के पीछे जाना, आवाज का आना]

आवाज—लक्ष्मण! लक्ष्मण! जल्दी आओ, मेरे प्राण बचाओ।

सीता—लक्ष्मण तुमने कुछ सुना?

लक्ष्मण—हां सुना, किन्तु यह धोखे की आवाज है। अवश्य कोई राक्षसो का साज है।

सीता—नहीं नहो! तुम जल्दी जाओ। उन पर अवश्य कोई संकट आया है; इसीलिये तो तुम्हें बुलाया है।

लक्ष्मण—माता जी ! ऐसी भूल न कीजिये ! कुछ सोच समझ कर आज्ञा दीजिये ।

सीता—तो क्या तुम भाई के संकट में भी काम न आओगे !

लक्ष्मण—संकट ! त्रिलोकी के नाथ पर संकट । :—

सकल संसार के संकट जो क्षण में दूर करते हैं ।
पड़ेगा कष्ट क्या उन पर जो सबके कष्ट हरते हैं ॥

सीता—तो क्या तू जाना नहीं चाहता है ? जो इस प्रकार उल्टी सीधी बातें बनाता है ।

लक्ष्मण—माता जी ! जाने को तो तैयार हूं किन्तु भाई की आज्ञा से लाचार हूं । आप धीरज धरें, किसी प्रकार की चिन्ता न करें ।

अधर्मी राक्षस हैं जाल धोखे के बिछाते हैं ।
हजारों रूप माया के घड़ी भर में बनाते हैं ॥

सीता—किन्तु लक्ष्मण ! मेरी दाहिनी आंख फड़क रही है; नेत्रों के सामने बिजली सी तड़क रही है, शगुन अच्छे नहीं हैं । जाओ । तुरन्त चले जाओ ।

लक्ष्मण—माता जी ।.....

सीता—(बात काटकर) मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं कि इसी समय पंचवटी को छोड़कर मृग वाली दिशा में चले जाओ !

लक्ष्मण—और आप को अकेली छोड़ दूं ।

सीता—हां, छोड़ दो ।

लक्ष्मण—किन्तु यदि कुछ हो गया तो ?

सीता—लक्ष्मण ! अब अधिक बातें करने का समय नहीं है; वार्तालाप तो फिर भी होते रहेंगे, इस समय शीघ्र चले जाओ ।

लक्ष्मण—क्षमा कीजिये माता । आज मैं आप की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा हूं; ढीट लक्ष्मण को क्षमा कीजिये ।

सीता—अब समझी ! कपटी लक्ष्मण ! मैं तेरे कहने का भाव अब समझी ! तूने अवश्य पाप का संकल्प किया है और मुझे अपनी

बनाने के लिये ही तू अयोध्या से हमारे साथ आया है। परन्तु याद रख :—

सच्चे को झूठ करना कोई खेल नहीं है।
सतियों का धर्म हरना कोई खेल नहीं है ॥
गन्धर्व, दनुज, देव जो मिल कर भी आएंगे।
सीता को अपने धर्म पै निश्चल ही पाएंगे ॥

लक्ष्मण—हाय हाय ! मैं यह क्या सुन रहा हू ! कैसे पाप का भागी बन रहा हूं ! आह माता ! :—

आंखें ये फूट जाएं यदि बद नजर करूं।
हो नर्क वास पाप का चिन्तन अगर करूं ॥
श्रद्धा है दिल में आप को जगदम्बे मान के।
चरणों को पूजता हूं सुमित्रा के जान के ॥

सीता—बस बस रहने दे ! क्यों बातें बनाता है। पाप का चिन्तन करते हुए तनिक भी नहीं लजाता ह :—

पाप है दिल में तेरे तू सोचता है घात की।
मेरे फुसलाने को बस मीठी रसीला बात की ॥

लक्ष्मण—आह ! :—

विधाता क्या दिखाया है हुआ माता मन उलटा।
गिरे आकाश से बिजली जो हा मेरा चलन उलटा ॥
नजर उलटी,वचन उलटा,परण उलटा कथन उलटा।
हुआ सारा जगत उलटा,मही उलटी, गगन उलटा ॥
समय उलटा तो मन उलटा सकल आकार उलटे हैं।
करम की मार होती है,तः सब व्यवहार उलटे हैं ॥

सीता—(सिर पीट कर) हाय कपटी लक्ष्मण ! मुझ क्या पता था कि तू बनों में आकर इस प्रकार विश्वास-घात करेगा; भाई का सेवक बन कर भाभी के साथ दाव घात करेगा :—

भोले पन से मैं नही थी जानती पापों का नाम।
क्या समझती थी कि अपने भी नहीं आयेंगे काम ॥

लक्ष्मण—बस माता जी ! अब नहीं सुना जाता। अपने मन को मैं आप ही जानता हूं। लीजिये, भाई की आज्ञा तोड़ता हूं और आप की आज्ञा मानता हूं। परन्तु इतनी कृपा अवश्य कीजिये कि (रेखा खींच कर) इस रेखा से बाहर पग न दीजिये :—

मिटाई जा नहीं सकती करम गत की कभी रेखा।
टली है आज तक किससे पड़ी जो भाग्य की रेखा॥
हे माता ! खींचता है आज यह लक्ष्मण यती रेखा।
वही जल कर भस्म होगा, जो लांघेगा मेरी रेखा॥

[लक्ष्मण का जाना, रावण का साधु-वेश में गाते हुए प्रवेश]

रावण—

गाना

जग में उसका यश फैला जो सन्त जनों को देता है।
चंचल माया है दुनिया की मूरख इस को लेता है॥
रीति यही है नियम यही और ज्ञान यही है वेदों का।
बोता है सो पाता है जो देता है सो लेता है॥
धर्म कर्म का सार यही है दान दिया जिसने जग में।
भवसागर के पार वही जन बेड़ा अपना खेता है॥

(जोर से) अलख दाता! भण्डार भरपूर रहें! संकट दूर रहें! शत्रु चूर रहें।

सीता—आइये महात्मन् ! कन्द मूल स्वीकार कीजिये !

रावण—आनन्द रहो सुन्दरी ! सौभाग्यवती हो। परन्तु देवी ! तुम दूर से ही भिक्षा दिखाती हो ? आगे क्यों नहीं आती हो ?

सीता—लीजिये महाराज ! थोड़ा आगे आकर ही भिक्षा ले लीजिये।

रावण—नहीं सुन्दरी ! सन्यासी लोग बान्धी हुई भीख नहीं लिया करते। यदि कुछ देना चाहती हो, तो इस रेखा से बाहर आकर दो।

सीता—क्षमा कीजिये महाराज! मैं बाहर नहीं आ सकती।

रावण—हां, हम जानते हैं ! तुम्हें लक्ष्मण ने मना कर दिया है ।
परन्तु देवी ! साधुओं से डरना निर्मूल है। सन्त जिसके द्वार
पर आ जाते हैं, ईश्वर उनके अनुकूल है।

सीता—महाराज ! आप ने सत्य कहा, परन्तु लक्ष्मण का कहा न
मानना भी तो बुरा है।

रावण—अच्छा देवी ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो लो हम
जाते हैं।

सीता—नहीं महाराज ! जाइये नहीं ! द्वार से साधु को खाली हाथ
लौटाना महापाप है लीजिये रेखा से बाहर ही भिक्षा
लीजिये ?

[सीता का बाहर आना, रावण का वेश उतारना, सीता का डर
जाना]

सीता—हैं। यह क्या।

रावण—देख और पहचान।

सीता—आप कौन हैं ?

रावण—लंकेश रावण, नहीं, नहीं जगत-नरेश रावण।

सीता—रावण ! तू यहां क्यों आया है ?

रावण—अपने बदले की अग्नि बुझाने के लिये अर्थात् तुझे हर कर ले
जाने के लिये।

भुलाओ राम का चिन्तन करो स्वीकार रावण का।
खड़ा है रथ तुम्हारे वास्ते तैयार रावण का॥

[उठा कर विमान में डालना]

सीता—(चिल्लाते हुए) हे जगदीश ! हे देव ! हे रघुनाथ जी ! रक्षा
करो ! इस दुष्ट से मेरी रक्षा करो !

चौपाई

हा रघुवर मुद-मंगल-कारी।
विपत-विदारन, सकट-हारी॥

रावण धूर्त विपत महा दीन्ही ।
अबला जानि हरण मोहि कीन्ही॥
त्राहि-त्राहि रघुपति रघुवीरा ।
लक्ष्मण ! आन हरहु मम-पीरा ॥
क्रोध-विवश तुम दोष लगावा ।
करम कियो सोई फल पावा ॥

[रावण का सीता को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(परदा—जंगल)

[रावण का सीता को ले जाते हुए दिखाई देना जटायु से मुठभेड़]

सीता—हे नाथ ? कहां हो ? इस दुष्ट से मेरे बन्धन छुड़ाओ । हाय राम ! मैं कितनी अभागिन हूं कि आप के चरणों से भी अलग हो रही हूं ।

दोष मेरा कुछ नहीं है नाथ ! अबला नार हूं ।
किस तरह आ कर मिलूं इस दुष्ट से लाचार हूं ॥

जटायु—(स्वयं) हैं ? यह रोने की आवाज कहां से आई ? इन दुख भरे शब्दों ने तो हृदय में अग्नि सी लगाई ।

सीता—(चिल्लाती हुई) हे गृद्धराज ! मेरी रक्षा करो ! मुझे इस अन्यायी के पंजे से छुड़ाओ ।

जटायु—हैं! यह तो मेरे ही नाम की पुकार आ रही है । प्रतीत होता है कि कोई स्त्री अपनी सहायता के लिये बुला रही है । सुनूं तो किस की आवाज है । (कान लगाकर सुनना)

सीता— गाना

हे भक्त राज आओ ? पापी सता रहा है ।
रक्षक करो मेरी अब सन्तोष जा रहा है ॥

सुनता नहीं है कोई कब से पुकारती हूं।
सब आर्तनाद मेरा बेकार जा रहा है॥
रावण महा अधर्मी पापों पै तुल गया है।
चरणों से जो पती के मुझ को छुड़ा रहा है॥
आशाओं का उजाला पड़ने लगा है मद्धम।
आंखों में अब कुशल इक अन्धेर छा रहा है॥

जटायु—(ध्यान से देखकर) ओह! यह तो जनकसुता है। श्री राम की प्यारी सिया है। अरे रावण! तू इसे क्यों सता रहा है? इस बेचारी अबला को कहां लिये जा रहा है?

रावण—क्यों! तू मेरा रास्ता रोकने वाला कौन है? चल! अपनी राह लग।

जटायु—अरे दुष्ट! आखिर तेरा क्या अभिप्राय है? पराई स्त्री को उठाकर ले जाना कहां का न्याय है?

वेदपाठी होके क्यों करता है दूषित कर्म को?
भूल बैठा क्यों अरे नादान! अपने धर्म को॥
है महा अनुचित दुखाना निर्बलों के मर्म को?
होके अन्धा क्यों गंवा बैठा है कुल की शर्म को॥
तू है ज्ञानी नेक और बद की जरा पहचान कर?
देख अपने हाथ से मिटने का मत सामान कर॥

रावण—अरे मूर्ख! अपनी शक्ति से अधिक क्यों पैर फैलाता है? जा अपना काम कर, पराई आग में कूद कर क्यों प्राण गंवाता है?

जटायु—हां! स्वार्थी को परहित में कहां आनन्द आता है? वह तो अपने स्वार्थ में डूब कर ही मर जाता है; परन्तु परोपकारी तभी सन्तोष पाता है, जब दूसरे की भलाई में अपने प्राणों की बलि चढ़ाता है।

रावण—परोपकारी के बच्चे! जरा अपनी औकात को तो देख! मेरी असीम शक्ति का अनुमान तो कर—

कहां तू है कहां मैं हूं, कहां मुझ से लडाई है।
जरा सी चींवटी है और पर्वत की चढ़ाई है॥
तुझे अपना विरोधी देखकर भी शर्म आई है।
मलूं हाथों से भुनगे को नहीं मेरी बड़ाई है॥

जटायु—अरे अभिमानी ! याद रख, जब मौत की आंधी का झोंका आयेगा तो सारा बल-बूता यहीं धरा रह जायगा। मूर्ख ! वैभव पर इतना अभिमान न कर। मैं फिर कहता हूं कि सती को सता कर अपने नाश का सामान न कर :—

जब नहीं विषहर तो फिर तू सांप को छूता है क्यों।
तैरना आता नहीं सागर में फिर कूदा है क्यों॥
खेलता है किस लिये अग्नि से मूर्ख खेल तू।
आग को चाहे बुझाना और डाले तेल तू॥

रावण—अरे अज्ञानी पक्षी ! तू क्या जाने कि मैंने सकल ब्रह्मांड पर अपना सिक्का जमाया है। बड़े बड़े देवता और दिक्पालों को अपना दास बनाया है। ऋद्धि-सिद्धि, ऋषि-मुनि दैत्य और दानव सबका माना हुआ महिपाल हूं। जिसको तू काल कहता है मैं उस का भी काल हूं।

मैं अगर चाहूं तो नभ-मण्डल में हल-चल डाल दूं।
पर्वतों को चीर दूं, जल-थल में हल-चल डाल दूं॥
फर दूं लोकों को, अस्ताचल में हल-चल डाल दूं।
पट पवन का फाड़ दूं, बादल में हल-चल डाल दूं॥
मार दूं ठोकर तो पल में धूल भू-मण्डल बने।
क्रोध से देखूं तो सागर सूख कर जंगल बने॥

जटायु—ओह ! इतना अभिमान ! अरे नादान ! माना कि तू बीस भुजाधारी है, किन्तु मौत तो तेरे सिर पर भी सवार है; कर्म की गति से तो तू भी लाचार है :—

वक्त से पहले जहां तक हो सके अभिमान कर।
सिंह को गीदड़ बना, बलहीन को बलवान कर॥

आग पानी से मिला, विष को सुधा अनुमान कर।
धूल को नभ में चढ़ा, आकाश को मैदान कर॥
पर है जल का बुलबुला, कुछ देर की यह शान है।
उन्नति में अवनति है, मान में अपमान है॥

रावण—बूढ़े नादान ! रावण को शिक्षा देने का ध्यान ! याद रख ! मैं अपने इरादे से बाज नहीं आऊंगा, सीता को छोड़कर कदापि न जाऊंगा।

जटायु—अच्छा यदि छोड़कर न जायगा तो ले जाने भी न पायेगा। याद रख :—

है मन में रामभक्ति राम का अरमान है जब तक।
धर्म की आन है जबतक, करम का ध्यान है जब तक॥
लगा सकता नहीं तू हाथ, तन में जान है जब तक।
भुजाओं में है बल और आत्मा में ज्ञान है जब तक॥
करूंगा इसकी रक्षा, राह में तेरी अड़ूंगा मैं।
धरम का पक्ष लेकर पाप से कुश्तो लड़ूंगा मैं॥

रावण—अच्छा यदि इतना साहस है तो आ ! पहले तुझे ही ठिकाने लगाता हूं। राम को पीछे देखूंगा पहले तेरी ही शक्ति आजमाता हूं।

[युद्ध होना, रावण का मूर्छित हो जाना]

जटायु—आओ बेटी सीता ! अन्याई मूर्छित हो गया, भगवान ने तुम्हारी खूब रक्षा की।

सीता—धन्य है ! गृद्धराज ! परोपकार इसी का नाम है; निर्बलों के लिए मिट जाना शूरवीरों का ही काम है।

जटायु—क्या कहती हो पुत्री ! मैंने कोन सा बड़ा काम कर दिखाया है केवल अपना कर्तव्य ही तो निभाया है।

सीता—क्यों नहीं महात्मन् ! आप जैसे कर्मवीरों के ऊपर ही तो धर्म का भार है। जो अपने लिये जीते हैं, उनका जीवन तो निःसार है।

जटायु—सीते ! मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित क्यों बनाती हो ? राई को पर्वत से किस लिये मिलाती हो ? भगवान को धन्यवाद दो जिस ने तुम्हारी रक्षा की !

रावण—(होश में आकर) नहीं ! कदापि नहीं ! ठहर ! अभी आता हूं और तुझे यम के दरबार पहुंचाता हूं ।

जटायु—अरे अन्यायी ! मैं फिर कहता हूं कि तू जानकी को न सता। ऐसा पाप करके अपनी मौत न बुला ।

दया कर किस लिये अबला पै इतना जुल्म करता है ।
सता कर तू इसे क्यों पाप का भण्डार भरता है ।।
रहा अब तक न आगे को किसी का मान दुनिया में ।
मिटेगा एक दिन तेरा भी बल-अभिमान दुनिया में ।

रावण—(कटाक्ष से) लो देखो ! गीदड़ सिंह को दांत दिखा रहा है, चींटा आकाश पर चढ़ा जा रहा है—

मूरख लगा रहा है गिरह नभ की चाल में ।
बांधगीं मकड़ियां भी गजानन को जाल में ।।

जटायु—रावण अब भी मान जा नहीं तो बहुत पछताएगा ।

रावण—चल ! दूर हो निर्लज्ज ! तू मेरे सामने क्या पांव अड़ायेगा ।

[रावण का अग्नि-बाण मारना, जटायु का गिरना]

जटायु—हाय ! बेटी सीता ! अब विवश हो गया ! अन्यायी ने अग्निबाण से सारा शरीर जला दिया ! क्षमा करना ! मैं तुम्हारी कोई सहायता न कर सका, मुझ क्षमा करना ।

सीता—भक्तराज! आप धन्य हैं । आप ने मेरी रक्षा के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर दिया, भगवान आप को इसका फल देंगे । अब इतना उपकार और करना कि यदि राम-लक्ष्मण इधर से आ जाएं तो उनसे सब वृतान्त बता देना । हाय राम !

[रावण का सीता को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

[राम का मृतक मृग को लिये हुये लौटना, मार्ग में लक्ष्मण का मिलना।]

राम—हैं ! लक्ष्मण ! तुम यहां कहाँ ? तुम ने जानकी को किस पर छोड़ा ? क्या तुम मेरी आज्ञा भी भूल गये ?

लक्ष्मण—क्या करूं भ्राता जी ! आपके चले आने के बाद माता जी ने एक आवाज सुनी। कोई आप को बोली में मेरा नाम ले लेकर पुकार रहा था।

राम—क्या कहा ? मेरी बोली में ?

लक्ष्मण—हां महाराज !

राम—तो उसे तुम्हारा नाम कैसे ज्ञात हुआ ? प्रतीत होता है वह कोई कपटी राक्षस था।

लक्ष्मण—यही मेरा भी विचार है नाथ ! मैंने माता जी को बहुत समझाया कि यह धोखे की आवाज है; राक्षसों का कोई साज है परन्तु उनको सन्तोष न हुआ; मेरे कहने पर तनिक भी विश्वास न आया !

राम—किन्तु तुमने फिर भी अच्छा नहीं किया ! जान बूझ कर धोखा खाया; क्या तुम नहीं जानते कि यह राक्षसों का देश है।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़ कर) क्या करता भ्राता जी !

गाना (तेरी करनी कुटिल·····)

टेक—नहीं मम दोष है भाई। वचन है सत्य रघुराई।

अन्तरा १—मृग के पीछे नाथ जब आये आप सिधार;
सीता माता ने सुनी दुख की हाहाकार।
बहुत ही मन में अकुलाई-वचन है सत्य·····

२—आज्ञा दी हे लक्ष्मण ! जाओ तुम तत्काल;
देखो प्राणाधार का मेरे है क्या हाल।
बड़ी दुखमय पुकार आई, वचन है सत्य·····

३—समझाया मैंने बहुत सुनी नहीं इक बात;
क्रोधित हो अनुचित वचन कह डाले हे तात।
'कुशल' होनी न टल पाई-वचन है सत्य……

राम—ठीक कहते हो लक्ष्मण ! कर्मगति बड़ी बलवान है; खैर चलो देखें, क्या बात है ?

लक्ष्मण—चलिए प्रभो !

[दोनों का जाना परदा गिरना]

दृश्य छठा

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण का आना और सीता को न पाकर उदास होना]

राम—(देख कर) लो देखो लक्ष्मण ? जानकी आश्रम में कहीं नहीं है। तुमने उन्हें कहां छोड़ा था ?

लक्ष्मण—मैं तो इसी स्थान पर छोड़ गया था प्रभो! आश्रम के बाहर इसी पाषाण-शिला पर।

राम—परन्तु यहां तो नहीं है।

लक्ष्मण—क्या बताऊं भ्राता जी, काल की गति कुछ कही नहीं जाती।

राम—मैं तो पहले ही जानता था कि राक्षस बड़े कपटी होते हैं। अवसर पाते ही कुछ न कुछ उपद्रव मचा ही देते हैं।

लक्ष्मण—आप का कहना ही हुआ महाराज !

राम—आह ! प्यारी सीते ! तुम कहां हो ! जल्दी आओ ! अभागे राम को अब अधिक न कलपाओ :—

अब सहा जाता नहीं आंखों से छिप जाना तेरा।
हाय प्यारी किस तरह देखूं यह शरमाना तेरा॥
छोड़ कर महलों के सुख वनवास में आना तेरा।
और फिर यूं रूंठ कर मुझ से चले जाना तेरा॥